अप्रैल–सितम्बर, 2025

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन अभिव्यक्ति

मूल्य : ₹ 70

सदस्य बनें

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन अभिव्यक्ति

(त्रैमासिक पत्रिका)

'समकालीन अभिव्यक्ति' एक साहित्यिक आन्दोलन है। कोई भी आन्दोलन जन भागीदारी के बिना सफल नहीं हो सकता। कृपया पत्रिका से जुड़कर आन्दोलन की सफलता सुनिश्चित करें। आपकी सदस्यता पत्रिका के लिए प्राणवायु है। वार्षिक या आजीवन सदस्य बनकर आप पत्रिका को दीर्घजीवी बना सकते हैं।

सदस्यता शुल्क हेतु बैंक खाते का विवरण

A/C NO : **50100251363948**
A/C Holder's Name : **POONAM MISHRA**
Bank Name : **HDFC BANK LTD**
IFSC CODE : **HDFC0001671**

सम्पादक

'समकालीन अभिव्यक्ति'

फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं. 7,
महरौली, नई दिल्ली - 110030

कृपया ध्यान दें

पत्रिका की वेवसाइट का पता बदल गया है।
नया पता है –

www.samkaleenabhivyakti.in

–सम्पादक

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन अभिव्यक्ति

वर्ष 23, अंक 94-95 अप्रैल-सितंबर, 2025

संपादकीय सम्पर्क:
फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं. 7,
महरौली, नई दिल्ली-30
Email: samkaleenabhivyakti@gmail.com

पत्रिका शुल्क:

इस अंक का मूल्य प्रति- 70/-, वार्षिक- 80/-
वार्षिक (संस्था) 100/-, आजीवन- 1000/-

संपादन/संचालन-पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचारों से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है।

समकालीन अभिव्यक्ति से संबंधित सभी विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

स्वामी/प्रकाशक/मुद्रक-उपेन्द्र कुमार मिश्र द्वारा ए। आर। इन्टरप्राइजेज, 2811, गली गढ़ैया, कूचे चालान, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 से मुद्रित तथा फ्लैट नं। 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-110030 से प्रकाशित, संपादक-उपेन्द्र कुमार मिश्र

संपादक
उपेन्द्र कुमार मिश्र
093 50899583

सहसंपादक
हरिशंकर राढ़ी
0965403 0701

दर्शन एवं संस्कृति संपादक
संतोष कुमार शुक्ल

सहायक संपादक
नवल किशोर भट्ट

मुखपृष्ठ
कृत्रिम मेधा

टाइप सेटिंग
विनोद यादव
98913 53 13 9

वेबसाइट
www.samkaleenabhivyakti.in

अनुक्रम

समकालीन अभिव्यक्ति

लेख

14. हिंदी ग़ज़ल के सरोकार और डी एम मिश्र की ग़ज़लें – डॉ. जीवन सिंह
18. लघुकथा सिर्फ लघुकाय नहीं होती! – राजेन्द्र सिंह गहलोत
21. रागनी और रणभूमि : हरियाणवी काव्यरूप में युद्ध प्रसंग – योगेश डागर

ललित निबंध

26. विरहिणी – आद्या प्रसाद द्विवेदी

कहानियाँ

32. पहले प्यार की पहली चिट्ठी – सुभाष चंदर
38. रेखाओं के उस पार – पूजा अग्निहोत्री
43. दस्तख़त – अनिल पुरोहित
47. वक्त से लंबी दोस्ती – संदीप तोमर
52. असुरक्षित – राजा सिंह
57. सत्यम् – नवल किशोर भट्ट

लघुकथा

62. साथ चलो ना – संजय मृदुल

संस्मरण

8. 'कबीर का अनभै–साँच' के बहाने: डॉ. नामवर सिंह और आचार्य रामचन्द्र तिवारी
29. काशी का अस्सी – अरविंद तिवारी

ग़ज़लें

51. अविनाश भारती
61. शालिनी खन्ना

कविताएँ

67. डॉ वेद मित्र शुक्ल
70. राजकुमार जैन राजन
71. संजीव द्विवेदी
72. पवन शर्मा
74. अवैद्य आलोक

व्यंग्य

65. सहित्य का सुपरहिट शो मैन – फारूक आफरीदी
68. लोकतंत्र का मज़ाक – हनुमान मुक्त

स्थायी स्तंभ

05 एक दुनिया और भी है। 63. वक्रोक्ति
80. खोज–खबर

पोथी की परख

75. गाँव के महाभारत की कथा
76. कंचनांजलि : विछोह की जमीन पर उपजा
78. व्यंग्य की लौ और समय का चेहरा : 'रोशनी की शिनाख़्त'

चुप्पी तोड़ो

अंधकार गहराता जाता, मन को कंपित करता भय
आशंका बलवती हो रही, क्या रावण की होगी जय?

उथल-पुथल है मची चतुर्दिक, षड्यंत्रों से जग शंकित
नए पृष्ठ विश्वासघात के, होते रहते नित अंकित

हारेंगे क्या सत्य, न्याय अब, हारेगी क्या मानवता?
निर्भय नृत्य करेगी जग में, क्या नरभक्षी बर्बरता?

क्रंदन, चीख, आह सुनकर कब, विचलित होती है पशुता?
जब-जब निर्दय पौरुष हँसता, तब-तब रोती मानवता

जो दुर्बल, असहाय, पराश्रित, वही शिकार हुआ करते
डरा, कुचल इनको ही कायर, जग में वीर बना करते

मद चाहे कैसा भी हो जब, सिर पर वह चढ़ जाता है
हर करके उसका विवेक तब, पागल उसे बनाता है

ऐसे पागल की कृत्यों से थर्राता इतिहास रहा
रही चीखती मानवता, वसुधा ने कितना दर्द सहा

लानत है उस यश-वैभव पर, पापकर्म से जो अर्जित
जिस पर था लज्जित होना वह, उस पर ही होता गर्वित

व्यापारिक हित की वेदी पर, रिश्तों की बलि दे डाली
पैसों से ढँकता रहता वह, अपनी करतूतें काली

सभ्य कहाने वालों के भी, देखा जग ने कर्म पतित
सोच, आचरण, कृत्य भयावह, दुनिया उनकी बहुत घृणित

वही भाग्य लिख रहे विश्व का, वही नियम- विधि के दाता
वही शत्रु मानवता के हैं, हर संकट के निर्माता

हर मसले का समाधान क्या, केवल अब है युद्ध बचा?
देखो जिधर उधर बरबादी, हिंसा, हाहाकार मचा

राष्ट्रभक्ति तब दिखलाएँगे जब यह धरती बची रहे
बचा रहे धरती पर मानव, मनुष्यता भी बची रहे

सजल नेत्र से प्रश्न पूछते हिरोशिमा, नागासाकी
दृश्य भयानक इससे भी क्या, अभी देखना है बाकी?

जिसके चिथड़े उड़े गर्भ में, गूँज रही वह किलकारी
गोला, बम, बारूदों वाली, दुनिया कितनी हत्यारी

धरती हमें मिली सुंदर पर, हमने ध्वंस मचा डाला
लिखना था स्वर्णिम लेकिन, हमने इतिहास लिखा काला

युद्ध न द्योतक कभी शौर्य का, वह मानव की दुर्बलता
जीत किसी की भी हो लेकिन, सदा हारती मानवता

निर्यातक आतंक, युद्ध का महाशक्ति कहलाता है
देख तबाही दुनिया की, वह खुश होता, इतराता है

जग रोता पर करता रहता, अट्टहास शठ, अभिमानी
शर्म कहाँ से आएगी जब, बचा न आँखों में पानी

नहीं सुरक्षित जग में कोई, सब पर खतरा मँडराया
एक-एक कर महाशक्ति से, कब है कोई लड़ पाया?

रक्तपिपासु दंभ का पौरुष, करुणा नहीं जानता है
अपनी मनमानी को ही वह, जगहित न्याय मानता है

जब चाहा अपने हित उसने, सबका है उपयोग किया
पुचकारा रख हाथ पीठ पर और युद्ध में झोंक दिया

जहाँ युद्ध है वहाँ खड़ा वह, दोनों को ललकार रहा
बड़ा कुशल है वह व्यापारी, खूब बेच हथियार रहा

सम्मुख संकट बड़ा अगर हो, तो आपस का बैर भूल
कठिन समय में सभी एक हो, कर सकते स्थिति अनुकूल

समय बताएगा तुम पूछो, कितने आए गए कहाँ
उनका आज नहीं कोई भी, लेने वाला नाम यहाँ

लेकिन जिसने मानवताहित जीवन जीकर दिखलाया
पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसके ही, यश का ध्वज है फहराया

वर्तमान से हुई चूक का, मूल्य चुकाता आगत कल
स्वाभिमान को आहत करता, भय से सृजित संधि का फल

लील रहा विस्तारवाद का, अजगर नित्य नया भूभाग
उसके दामन पर हैं कितने पड़े हुए लहू के दाग

लड़ा रहा आपस में सबको, करके पूरी तैयारी
छोड़ेगा वह नहीं किसी को, निगलेगा बारी-बारी

स्वाँग हितैषी का रचता पर, हर दुश्मन से है बढ़कर
करता है विषवमन अहर्निश, नए बहाने वह गढ़कर

सह-अस्तित्व, शांति, समरसता, समता, क्षमा, प्रेम या मेल
उसे न भाए जिसको प्रिय हो, सिर्फ़ मारकाट का खेल

चुप रहता अन्याय देख जो, उसे शौर्य कहेगा कौन
युग के अपराधों में शामिल, रहे महारथी हो मौन

द्वेष, घृणा, छल, दंभ बिना क्या, असंभव मानव व्यवहार
कितना हिंसक, क्रूर हो गया, आज हमारा यह संसार

यह धरती जब सबकी है तो, सहअस्तित्व करें स्वीकार
मिले सभी को निर्भय, सुंदर, अबाधित जीवन अधिकार

संप्रभुता हर एक राष्ट्र की, रखे एक बराबर मान
समझें छोटा नहीं किसी को, शक्ति देख न दें सम्मान

विजय हृदय पर प्राप्त करें हम, बने अपनापन आधार
बैर, लोभ को जगह मिले ना, इतना हो प्रेम-विस्तार

अहंकार के क्रूर कृत्य की, करें भर्त्सना मिलकर सब
समरथ को नहिं दोष गुसाईं, हम यह कहना छोड़ें अब

स्वर विरोध का और प्रबल हो, अराजकता का हो अंत
किया युद्ध ने जिसे खंडहर, आए पुनः वहाँ वसंत

भेद मिटे शासक-शासित का, दुनिया हो अपना परिवार
द्वेष-दमन से मुक्त धरा हो, शालीन सबका व्यवहार

(उपेन्द्र कुमार मिश्र)

फिर कब आएँगे?

★ उपेन्द्र कुमार मिश्र

संपादक

वे चले गए। चिता की आग तो जल्दी बुझ जाती है लेकिन शोक की आग बुझने में समय लगता है। उन्हें अग्नि को समर्पित कर हम लौट आए थे। बाहर धूप था, अंदर अँधेरा। शब्द चुप्पी ओढ़े थे, आँखों में चिता की उठती लपटों का दृश्य ठहर गया था, मन में एक अजीब सन्नाटा पसरा हुआ था। अपने को सामान्य करने की जद्दोजहद चल रही थी। इसी मनःस्थिति में उनकी श्रद्धांजलि सभा में शामिल हुआ था। गुमसुम सुन रहा था लोगों को। वे इस स्थिति में थे कि बोल सकते थे। जब लोगों ने कहा कि वे साहित्य के वटवृक्ष थे, तो मैं चौंका। आश्चर्य से नहीं, अपनी अनभिज्ञता से। इतनी बार मिला था, उन्होंने कभी जताया ही नहीं कि वे साहित्य के वटवृक्ष हैं। जताने, बताने और दिखाने में उनका विश्वास नहीं था। उनका बड़ा होना भयाक्रांत नहीं करता था। किसी को छोटा होने का अहसास कराकर अपने को बड़ा जताते हुए उन्हें कभी नहीं देखा। मेरे जैसा अदना व्यक्ति भी जब उनसे मिलकर बाहर निकलता था तो महसूस करता था कि उन्होंने उसे थोड़ा बड़ा बना दिया है। मन हीनता के बोध से मुक्त हो सकारात्मक ऊर्जा से भर जाता था। निरंतर सृजनशील बने रहने की प्रेरणा रचनात्मकता के नए-नए द्वार खोलने लगती थी। हम कंगाल बने जाते थे, समृद्ध होकर लौटते थे। मैं तब भी नहीं समझ पाया था कि वे वटवृक्ष हैं। समझता भी कैसे, जब तक उनके पास रहता, आत्मीयता की अनुभूति में डूबा रहता। हमें अपने से थोड़ा दूर बैठा देखकर वे असहज हो उठते थे। बुलाकर अपने पास बैठा लेते थे-'आओ, यहाँ बैठो!'

चाय पिलाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि साथ में हम बिस्किट और नमकीन भी ले रहे हैं कि नहीं। 'और लीजिए' कहकर वातावरण में इतना अपनत्व घोल देते थे कि हम मुग्ध हो अमल करने लगते थे उनके आग्रह पर। ऐसे में विशालता की गुरुता को भूल हम उनकी सहजता, सरलता और विनम्रता के अधीन हो जाते थे।

लेकिन, जिस दिन शाम को ख़बर मिली कि रामदरश जी अब नहीं रहे, एक झटका-सा लगा। वहीं धम्म से बैठ गया। मन कुछ सोचने की स्थिति में नहीं था। बिना हिले-डुले बहुत देर तक बैठा रहा। जब चेतना लौटी तो मन उनके साथ बिताए समय को याद करने लगा। शायद, अब वह उनके न होने की ख़बर को सच मान चुका था। कई चित्र उभरे, कई स्मृतियाँ कौंधी। पहली बार मिलने के लिए जाते समय की घबराहट याद आई। वह संकोच याद आया। याद आया उनकी सरल मुसकान के वशीकरण का पहला अनुभव। लगा ही नहीं कि दो अपरिचित लोग पहली बार मिल रहे थे। अपनत्व की गरमाहट से संकोच

पिघलता चला गया। हम उन्हें देखते रहे, सुनते रहे। गए थे अपरिचित बनकर, लौटे थे उनका होकर। उनका हो जाने के बाद फिर चैन कहाँ था? मिलने का सिलसिला चल पड़ा। उनसे मिलने का सुख, उन्हें सुनने का सुख हमें खींच ले जाता था उनके पास। आत्मीयता का लालच तो था ही। कब-कब मिले, कहाँ-कहाँ मिले। खूब मिले, लेकिन लगता था बहुत कम मिले। कहने को तो कोई रिश्ता नहीं था, लेकिन कुछ था, जो हमें धकियाता रहता था उनसे मिलने के लिए। चलो, बहुत दिन हुए, मिल आओ। इतनी उत्सुकता, इतनी बेचैनी तो किसी रिश्ते में भी बहुत कम देखने को मिलती है। उस अनकहे रिश्ते में नैसर्गिक लगाव था, एक तरलता थी, अपरिभाषित अधिकारबोध था। एक तड़प-सी उठी और शांत हो गई। सन्नाटा बढ़ता चला गया।

कुछ यादें कितनी पारदर्शी होती हैं, यह मैं महसूस करने लगा। देख लगा था उन यादों के आर-पार। सोचने लगा, उनका वात्सल्य प्रेम भी कितना पारदर्शी था। जब भी हमारी कोई पुस्तक प्रकाशित होती, हमसे ज्यादा वे खुश होते थे। हम दौड़े चले जाते थे उनके पास, पुस्तक भेंट करने के लिए। वे केवल पन्ना नहीं पलटते थे, कुछ समय के लिए उनमें खो जाते थे। केवल आवरण के आकर्षण से प्रभावित होकर वाहवाही करने वालों में वे नहीं थे। कथ्य और भाव की गहराई में उतरकर उसका मूल्यांकन करते थे। अपनी राय बनाते थे। फिर उस पर सारगर्भित दो शब्द बोलते थे। अनौपचारिक रूप से वही हमारे लिए पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण विमोचन होता था। अब हम कहाँ जाएँगे? कौन है जो लपककर कहेगा कि आइए-आइए, आपकी कोई पुस्तक भी आई है न? और पुस्तक देखकर सहज मुसकान के साथ उसका स्वागत करेगा। स्मृतियाँ नम हो उठीं। अब जब भी हमारी कोई पुस्तक प्रकाशित होगी, उनकी याद हमें विचलित करेगी। नेह पगी स्मृतियाँ कचोटेंगी। उनके न होने से उत्पन्न रिक्तता और अधिक सालेगी। मूर्त रूप से न सही लेकिन उनकी अमूर्त उपस्थिति तो सदा हमारे साथ रहेगी ही, साथ ही रहेगी उस गाढ़े अपनत्व की अनुभूति भी।

साहित्यकार कभी मरता नहीं है, वह अपनी रचनाओं के माध्यम से सदैव जीवित रहता है, इसलिए उसकी शोक-सभा नहीं, स्मृति-सभा का आयोजन होना चाहिए। उन्हें याद करते हुए लोग यह एहसास करा रहे थे कि वे किस रूप में उनके भीतर कितना मौजूद हैं। सबसे उनका जुड़ाव था। वे सबके अपने थे। उनके अपनत्व पर सबका अधिकार था। जिनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति वहाँ नहीं हो पाई, वे उनके भी अपने थे।

उनके न होने की ख़बर से साहित्य जगत में सन्नाटा पसर गया था। रात और काली होती चली गई। न अंदर कुछ सूझ रहा था, न बाहर। बहुत देर तक गुमसुम बैठा रहा। सोशल मीडिया शोक संवेदनाओं से भरा पड़ा था। यह स्थिति चार-पाँच दिन तक बनी रही। तब समझ पाया कि वटवृक्ष होना कहते किसे हैं। उनकी व्याप्ति कहाँ-कहाँ तक थी, उसकी एक झलक देख सका। उनसे मिलने या देखने का सौभाग्य इनमें से सबको प्राप्त हुआ हो, ऐसा नहीं लगता। जिन्हें उनके व्यक्तित्व से साक्षात्कार का सुअवसर प्राप्त नहीं हो पाया होगा, वे उनके कृतित्व के जादुई सम्मोहन के वशीभूत हुए होंगे। व्यक्तित्व का प्रभाव समकालीन होता है, कृतित्व का सर्वकालिक। मुझे पहली बार अपनी अल्पज्ञता पर इतना अफ़सोस हुआ। समय रहते यह समझ नहीं सका था कि मेरे ऊपर जिनके आशीर्वाद की घनीभूत छाया है, वे साहित्य के वटवृक्ष हैं।

उन्हें याद करते हुए जब यह कहा जाता है कि वे अपने साहित्य के माध्यम से सदैव हमारे बीच उपस्थित रहेंगे, तो पता नहीं क्यों यह जानकर भी मैं अपने को ढाँढ़स नहीं बधा पाता हूँ। उनसे मिलने, देखने और सुनने की जिसको लत पड़ चुकी हो, उसे केवल इस कथन से संतुष्टि कैसे मिल सकती है? जितनी देर तक हम उनके पास होते थे, उतनी देर हम साहित्य से बोलते-बतियाते रहते थे। उनको देखना और सुनना, साहित्य को देखना और सुनना था। उस मौखिक साहित्य जैसा सम्मोहन, लिखित साहित्य में कहाँ संभव है? साहित्य का वह दृश्य-श्रव्य रूप भला कोई कैसे भूल सकता है?

उनकी वह सरल मुसकान हमारे हृदय में कितने भाव-अनुभाव को तरंगित करती रहती थी, उसकी स्मृति मात्र से हम विह्वल हो उठते हैं। उनकी चुप्पी भी कितनी अर्थपूर्ण होती थी! उसी से हमने जाना कि जिसे मुखर होकर नहीं कहा जा सकता, उसे मौन रहकर कहा जा सकता है। लेकिन वे इस तरह से चिर मौन हो जाएँगे, यह सोचा नहीं था।

श्रद्धांजलि सभा के बाद साहित्यिक संस्थाओं द्वारा स्मृति सभाओं का आयोजन होने लगा। उसके पीछे दिया जाने वाला यह तर्क अच्छा लगा कि साहित्यकार कभी मरता नहीं है, वह अपनी रचनाओं के माध्यम से सदैव जीवित रहता है, इसलिए उसकी शोक-सभा नहीं, स्मृति-सभा का आयोजन होना चाहिए। उन्हें याद करते हुए लोग यह अहसास करा रहे थे कि वे किस रूप में उनके भीतर कितना मौजूद हैं। सबसे उनका जुड़ाव था। वे सबके अपने थे। उनके अपनत्व पर सबका अधिकार था। जिनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति वहाँ नहीं हो पाई, वे उनके भी अपने थे। कुछ संवेदनाएँ ऐसी थीं, जिधर किसी का ध्यान नहीं गया। किसी ने उनकी चुप्पी नहीं पढ़ी। वे किससे कहें कि उस समय उनकी हालत कैसी थी? चुप्पी के भीतर की वेदना, मुखर पीड़ा से अधिक दाहक होती है। वे फूलों के अपने थे, चिड़ियों के अपने थे, पेड़-पौधों के अपने थे, आषाढ़ के बादल के अपने थे, बारिश की बूदों के अपने थे। वे प्रकृति के सहचर तो थे ही, प्रेम और प्रीति के प्रतीक भी थे। वे स्वयं में वसंत थे। वे दादरा के अपने थे, चैता के अपने थे, ठुमरी के अपने थे, फागुन के अपने थे, लोकजीवन के राग-रंग के अपने थे। उनके गीतों, ग़ज़लों और कविताओं में जो जीवनराग मुखरित हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गाँव की मिट्टी की उदासी किसी ने नहीं देखी, खेत-खलिहानों की जोह-ख़बर किसी ने नहीं ली, जिस गोर्रा और राप्ती ने उनके बचपन को झकझोरा था,उन्हें साहित्यिक पहचान दिलाकर वे उनके भी अपने बन गए थे। उनके महाप्रयाण के बाद उनके अनमने प्रवाह के दु:ख-दर्द को किसी ने नहीं समझा। सबके पास अपनी पीड़ा थी,सबके पास उनसे जुड़ी अपनी यादें थीं। अपनी वेदना को शब्दों में व्यक्त करते समय किसी को यह भी ध्यान नहीं था कि अपने अनन्य साधक के चले जाने के बाद आज उन शब्दों पर क्या गुज़र रही होगी?

सरल होना बहुत कठिन है, कहना बहुत आसान। उन्हें देखकर जाना कि यह केवल एक शब्द नहीं है, मनुष्यता की सुंदरतम अभिव्यक्ति है। केवल बाहर से सरल दिखना ही सरल होना नहीं होता। अन्त:करण की शुचिता के बिना सरलता संभव नहीं। सरल होना भाषा में सरल होना है, भाव में सरल होना है, अभिव्यक्ति में सरल होना है, आचरण में सरल होना है, व्यवहार में सरल होना है। इस सरलता के बिना उनकी जैसी निश्छल मुसकान असंभव है।

कहा जाता है कि मनुष्य की स्मृति की उम्र बहुत छोटी होती है। उसे भूलते देर नहीं लगती। लेकिन शब्दों की स्मृति अल्पजीवी नहीं होती। जिन शब्दों की साधना वे जीवनपर्यंत करते रहे, वे अपने साधक को कभी नहीं भूल सकते। उनमें उनकी उपस्थिति सदैव बनी रहेगी। उन्होंने शब्दों के साथ कभी छल नहीं किया। उनके शब्दों में अवसरवादिता नहीं थी, आडंबर नहीं था। ऐसे ही शब्दों से उन्होंने साहित्य रचा है। फिर वे उनके साथ छल कैसे कर सकते हैं? उन शब्दों पर वे भरोसा कर सकते हैं। वे सदैव उन्हें अपनी पहचान से जोड़े रखेंगे।

हम मनुष्य हैं न, हमारी अपनी कमजोरियाँ तो रहेंगी ही। रोजमर्रा की भागदौड़, दुनियादारी, आत्मश्लाघा, आत्मप्रचार, प्रदर्शन, प्रवंचना, उठाने-गिराने की होड़ में हम इस तरह मशगूल हो जाएँगे कि उनके जन्मदिवस और पुण्यतिथि पर उन्हें याद कर लें, यही बहुत होगा। लेकिन पगडंडी की जिस धूल को उन्होंने राजपथ पर सम्मान दिलाया है, वह उन्हें नहीं भूलेगी। गाँव से लाई जिस मिट्टी में उन्होंने शहर उगाया है, वह मिट्टी उन्हें नहीं भूलेगी। हर साल बाढ़ की विभीषिका झेलने वाले लाखों लोगों की संवेदना को उद्वेलित करते पानी के प्राचीर उन्हें प्रासंगिक बनाए रखेंगे। समय तो उनका सहचर रहा है, शायद वह भी उन्हें न भूल पाए। बिना दरवाज़े के मकान से वे चुपचाप निकल गए, अब अपने आकाश की छत से थकी हुई सुबह, अपने लोग और परिवार को देखते रहेंगे। उनके परिवार का दायरा तो न जाने कहाँ-कहाँ तक फैला हुआ है! आज उसकी हालत यह है कि पथ के गीत गाते हुए भी, हँसी ओठ पर आँखें नम हैं। बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ पूछ रही हैं - 'फिर कब आएँगे?'

❋❋

'कबीर का अनभै–साँच' के बहानेः डॉ. नामवर सिंह और आचार्य रामचन्द्र तिवारी

★ शशिबिन्दुनारायण मिश्र

जन्म : *रानापार, गोरखपुर*
शिक्षा : *एम. ए. (हिन्दी एवं संस्कृत)*
सम्प्रति : *प्रवक्ता*
अन्य योग्यता : *आठ वर्षों तक आकाशवाणी गोरखपुर में आकस्मिक उद्घोषक।*
सृजन : *'व्यक्तित्व-विभास' (संस्मरण संग्रह)*
सम्मान/पुरस्कार : *काव्य प्रतियोगिता सम्मान, भागीरथी साहित्य-रत्न सम्मान, निर्दलीय शिखर सम्मान, भोपाल।*

संपर्क :
53- डी, गोरक्षनगर, सिंघड़िया, पोस्ट-कूड़ाघाट, जिला-गोरखपुर, उ. प्र.-273008
मोबाः *7068986128 / 9453609462*

'कबीर का अनभै-साँच' विषय पर मई 1997 में (जैसा कि उस वर्ष की मेरी डायरी में जिक्र है) दी. द. उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के प्रेक्षागृह में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई थी, मंच पर हिन्दी के मूर्धन्य समालोचक आचार्य रामचन्द्र तिवारी, मार्क्सवादी हिन्दी आलोचना के शिखर-पुरुष डॉ नामवर सिंह और मार्क्सवादी कवि-आलोचक प्रोफेसर परमानंद श्रीवास्तव प्रभृति हिन्दी के श्रेष्ठतम विद्वान-साहित्यकार विराजमान थे। कार्यक्रम में डॉ नामवर सिंह मुख्य अतिथि थे और आचार्य रामचन्द्र तिवारी कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे थे । चूँकि आचार्य रामचन्द्र तिवारी को उस समय सुनाई कम पड़ रहा था, इसलिए उन्होंने डॉ परमानंद श्रीवास्तव से डॉ. नामवर सिंह के वक्तव्य की जरूरी चीजें नोट कर उन्हें उपलब्ध कराने के लिए संकेत किया था। डॉ नामवर सिंह के उद्बोधन के तुरन्त बाद डॉ परमानन्द श्रीवास्तव ने अपने द्वारा नोट किये गए डॉ नामवर जी के वक्तव्य के कुछ आवश्यक 'प्वाइंट्स' आचार्य तिवारी को उपलब्ध कराया, उसी 'प्वाइंट्स' पर केन्द्रित होकर आचार्य तिवारी धाराप्रवाह बोले थे।

डॉ नामवर सिंह ने अपने अतिथि उद्बोधन में 'अनभै-साँच' को कबीर के 'अनुभवात्मक स्वसंवेद्य ज्ञान' से जोड़ कर व्याख्यान दिया था और कहा था कि जहाँ तक मुझे जानकारी है, कबीर की साखियों में 'अनभै-साँच' दोनों पद एक साथ पढ़ने को नहीं मिला है।

आचार्य तिवारी जी ने बाद में अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में नामवर सिंह जी की मान्यताओं को एक सिरे से अमान्य कर दिया और अनेक साखियों को उद्धृत करते हुए 'कबीर का अनभै-साँच' पर व्यापक प्रकाश डाला और उसे कबीर के जीवन में निर्भय / अभय होकर साँच कहने से जोड़कर देखा। आचार्य तिवारी जब बोल रहे थे तो 'कबीर का अनभै -साँच' तिवारी जी में स्वतः साकार हो रहा था।

तिवारी जी ने कुछ ऐसी साखियों को भी उद्धृत किया था, जिनमें 'अनभै-साँच' दोनों पद साथ-साथ मौजूद थे। मैं एक श्रोता के रूप में पहली बार आचार्य रामचन्द्र तिवारी और डॉ नामवर सिंह को एक कार्यक्रम में एक साथ एक मंच पर सुन रहा था। वह बड़ा ही रोमांचकारी अनुभव था। वैसे उससे पहले अलग-अलग तो डॉ तिवारी और डॉ नामवर सिंह को बहुत बार सुन चुका था, लेकिन उस दिन दोनों लोगों को एक मंच पर एक साथ पहली बार सुना।

कार्यक्रम में मैं शुरू से लेकर अन्त तक रहा। मैं सुनने का शुरू से ही बहुत शौकीन रहा हूँ, बशर्ते चीजें मेरी पसंद की रहती हों। आचार्य तिवारी का कबीर पर केन्द्रित व्याख्यान सुनकर वाकई में बड़ा अच्छा अनुभव हो रहा था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र तिवारी को कबीर साहित्य का विशेषज्ञ विद्वान् माना जाता है। डॉ नामवर सिंह जी ने अपने उद्‌बोधन में बड़ी साफगोई से इस बात को कहा भी था –'आचार्य तिवारी कबीर साहित्य के विशेषज्ञ विद्वान् हैं, वे इस पर मुझसे बेहतर प्रकाश डालेंगे।'

आचार्य तिवारी ने अपने उद्‌बोधन में कहा – "कबीर पूरी तरह से सत्ताविहीन थे, संत थे, फक्कड़ थे, अन्याय-अन्धविश्वास व रूढ़ियों के विरोधी थे, समाज सुधारक थे, क्रान्तिकारी –कवि थे, जो भी थे पर उनमें 'अनभै–साँच' मनसा–वाचा–कर्मणा मौजूद था, रोम –रोम में विद्यमान था। कबीर अपनी 'अनभै–साँच' प्रवृत्ति के कारण ही अपनी अटपटी वाणी में रस पैदा कर पाते हैं, कबीर के 'अनभै–साँच' वाणी में रस न देख पाना अपनी ही दृष्टि–दोष का परिचय देना है।"

हिन्दी के प्रतिष्ठित समालोचक एवं कवि डॉ कृष्णचन्द लाल से वर्षो बाद एक मुलाकात में मैंने उपर्युक्त कार्यक्रम की प्रसंगवश चर्चा की थी तो डॉ कृष्णचंद लाल ने आचार्य रामचन्द्र तिवारी की आलोचना दृष्टि पर जो बातें कही थीं, उसे भी मैं हू–ब–हू यहाँ देना चाह रहा हूँ। डॉ कृष्णचंद लाल कहते हैं– – – 'पाठनिष्ठ और तर्कसम्मत मूल्यांकन आचार्य रामचन्द्र तिवारी की आलोचना की मुख्य विशेषता है। उनकी 'कबीर–मीमांसा' पुस्तक कबीर सम्बन्धी समीक्षाओं को एक जगह आलोचनात्मक विवेक के साथ पढ़ने का तो अवसर देती है, कबीर के सभी पक्षों को संतुलित ढंग से समझने में मदद भी करती है। यह कबीर का आग्रहमुक्त मूल्यांकन है। कबीर की 'अटपटी वाणी में रस' पर विचार करते हुए तिवारी जी ने लिखा है कि –'उनकी रसात्मक भूमि तक पहुँचने के लिए अपनी भाव–परिधि का विस्तार करना होगा।'

डॉ कृष्णचन्द लाल इस बात पर जोर देकर कहते हैं– – 'आचार्य रामचन्द्र तिवारी की आलोचना की बड़ी विशेषता यह है कि वे विरोधी विचारों के बीच से रास्ता निकालते हैं, विरोधी विचारों के बीच सारतत्त्व निकालते हैं और कहते हैं कि सत्य यह है। तिवारी जी की आलोचना दृष्टि बहुत संतुलित है। संतुलित इस मामले में कि वे एक पक्ष होकर कभी बात नहीं करते हैं। उनका ये उद्देश्य कतई नहीं होता है कि किसी खास विचारधारा के वशीभूत होकर किसी को गलत ठहराएँ। तिवारी जी तोड़–फोड़ अथवा उठा–पटक वाले आलोचक नहीं रहे हैं, इसलिए तिवारी जी की चर्चा उस तरह के आलोचकों में नहीं होती है, जिस तरह से तोड़–फोड़ वाले आलोचकों की होती है। यह आप जान लीजिए कि जो व्यक्ति रचनात्मक होता है उसकी चर्चा कम होती है, आज के युग का यह मुहावरा है कि जो ध्वंसात्मक होता है, उसकी चर्चा अधिक होती है। किसी की बे–सिर–पैर की आलोचना कर दीजिए, उस आलोचना को जगह–जगह पढ़ा–पढ़ाया जायेगा। किसी की गम्भीर और तथ्यपरक आलोचना कीजिए, उस पर लोगों का ध्यान कम जाता है। तिवारी जी की आलोचना आपको विचार देती है, उद्वेग थोड़ा कम पैदा करती है। तिवारी जी उठा–पटक और विवादास्पद बातें नहीं करते हैं। हिन्दी में उठा–पटक वाली आलोचना नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी आदि ने चलाई। तिवारी जी विवादों में भी संवाद पैदा करते हैं।'

निस्संदेह, हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र तिवारी संतुलित दृष्टि के तर्कशील समालोचक हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी समालोचना में डॉ नामवर सिंह का नाम देश के वरिष्ठतम समालोचकों व वक्ताओं में सर्वाधिक प्रतिष्ठा से लिया जाता रहा है, बहुतेरे उन्हें मार्क्सवादी आलोचना का शिखर पुरुष भी मानते हैं। नामवर सिंह की आलोचनात्मक पुस्तकों में मार्क्सवाद का सर्वत्र प्रभाव है, लेकिन उनकी आलोचनाओं और निबन्धों दोनों में वैचारिक असंगति ज्यादा दिखती है। नामवर सिंह जी ने प्रयोगवाद और उसके बाद के सभी महत्त्वपूर्ण कवियों पर विचार करते हुए शमशेर बहादुर सिंह को अपना पसन्दीदा कवि बताया था, लेकिन शमशेर बहादुर सिंह पर बहुत लिखा नहीं। इस तरह की विसंगतियों को लेकर नामवर सिंह जी की आलोचना भी हुई, पर उन्होंने इसकी कभी परवाह नहीं की। नामवर सिंह के लिए कम्युनिस्ट / मार्क्सवादी होना महत्त्वपूर्ण है।

नामवर सिंह जी स्वयं अपने लेखन और चिन्तन को राजनीतिक विचारधारा से अन्त तक प्रभावित मानते रहे। नामवर सिंह का मानना है कि राजनीति साहित्य के लिए बाधक नहीं होती बल्कि लेखक की कलम को धार देती है। इससे यह स्पष्ट है कि जो

उनकी विचारधारा का नहीं रहा, वह उनकी आलोचना के लिए फिट नहीं बैठा, चाहे वह जितना बड़ा क्रिएटिव रचनाकार रहा हो। नामवर सिंह धर्म और परम्परा की खिंचाई बड़े भाव और चाव से करते हैं और पाश्चात्य या भारतीय धर्म/परम्परा विरोधी विचारकों के विचारों को उद्धृत करते हुए गौरवान्वित महसूस करते हैं। धर्म और परम्परा को भारतीय परिप्रेक्ष्य में नामवर सिंह ने क्या उचित दृष्टि से समझा था? यह विमर्श का विषय है।

अपनी समालोचना में नामवर सिंह ने अपनी विचारधारा और अपनी पसन्द के रचनाकारों को अधिक तरजीह दी, उनके लिए तटस्थता और निष्पक्षता कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रही। इसलिए वे अपने समय के अज्ञेय प्रभृति देश के बड़े रचनाकारों के साथ आलोचना में न्याय नहीं कर सके, इसका दर्द अज्ञेय ही नहीं, उनके बाद के देश के जाने-माने साहित्यकार डॉ निर्मल वर्मा एवं डॉ रामदरश मिश्र जैसे अनेक बड़े रचनाकारों को रहा है। नामवर सिंह जी का विवादों से शुरू से ही नाता रहा। उन्होंने कभी 'वाद-विवाद' में 'संवाद'नहीं पैदा किया, बल्कि 'संवाद' में भी 'वाद-विवाद' पैदा किया। डॉ नामवर सिंह 'वाद-विवाद संवाद' नामक अपनी महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तक में 'अनभै साँचा' शीर्षक भूमिका में स्वयं लिखते हैं- 'वह संवाद क्या जिसमें कुछ वाद-विवाद न हो। लेकिन हिन्दी संस्कृति में वाद-विवाद को अच्छा नहीं समझा जाता। कबीर तक से कुछ लोग इसीलिए बिदकते हैं कि उनमें खण्डन-मण्डन है।'

स्पष्ट है कि नामवर जी 'वाद-विवाद' को अधिक महत्त्व देते हैं, 'संवाद' को नहीं। यह उनके साहित्यिक जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। 'वाद-विवाद संवाद', के अतिरिक्त 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', 'इतिहास और आलोचना', 'कहानी : नयी कहानी', 'कविता के नये प्रतिमान', 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', 'दूसरी परम्परा की खोज' और 'छायावाद' आदि डॉ नामवर सिंह की महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। उन्हें पढ़ने से लगता है कि उन्होंने पाश्चात्य समीक्षा साहित्य गहराई से पढ़ा और आत्मसात किया है।

जॉर्ज लूकाच के मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र से तथा लूसिए गोल्डमान, प्लेखानोव, मिखाईल लिफशित्स आदि पाश्चात्य मार्क्सवादी विचारकों से नामवर सिंह बेहद प्रभावित लगते हैं। नामवर सिंह जी आलोचना में मार्क्सवादी तत्त्व जरूर ढूँढ़ते हैं। अपनी विचारधारा से इतर पूर्ववर्ती और समकालीन उत्कृष्ट रचनाओं में भी कमजोरियाँ / कमियाँ वे खोज लेते हैं। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र तिवारी उन्हें बड़ी शालीनता से 'दूसरी परम्परा का अन्वेषक' कहा है, तिवारी जी के ऐसा कहने का ढंग था। तिवारी जी अपनी सज्जनता और निर्मत्सर स्वभाव के लिए भी ख्यात रहे हैं। आगे तिवारी जी कहते हैं- 'उन्होंने आचार्य शुक्ल के इतिहास की कमजोरियों को लक्षित करते हुए कहा है कि इसमें हिन्दी-साहित्य को पूर्ववर्ती साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओं के सम-सामयिक साहित्य से विच्छिन्न करके देखा गया है और वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं एवं विचारों में असंगति अथवा अन्तर्विरोध को नहीं पहचाना गया है।' (हिन्दी आलोचना : डॉ रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ -135)

त्रिलोचन का 'हिन्दी समीक्षा और आचार्य शुक्ल' शीर्षक का एक निबन्ध मैंने कहीं पढ़ा था, जिसमें वे लिखते हैं -- 'एक बंगाली मित्र से बातचीत के सिलसिले में मैंने पूछा कि कवीन्द्र रवीन्द्र के बाद बंगला में कोई बड़ा कवि क्यों नहीं हुआ? चट प्रश्नात्मक उत्तर मिला, 'और पं रामचन्द्र शुक्ल के बाद हिन्दी में कोई बड़ा समीक्षक क्यों नहीं हुआ? .... आचार्य की उपेक्षा करके नया कदम उठाना सम्भव तो है, परन्तु अपूर्ण। प्रत्येक साहित्य की अपनी एक परम्परा होती है और प्रत्येक शिष्ट, सभ्य तथा संस्कृत जाति उस परम्परा का ध्यान रखते हुए उसमें नयी कड़ी जोड़ती है। नवीनता दृष्टिकोण की है, समीक्षा के उपादान तो वही रहेंगे। मार्क्सवादी समीक्षा एक दृष्टिकोण मात्र है, वर्तमान युग की पूर्ण समीक्षा पद्धति नहीं।'

त्रिलोचन की यह बात आज भी शत-प्रतिशत उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी 1950 में थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी समीक्षा में रस की या भाव की सत्ता को खुले मन से स्वीकार किया है, वे भारतीय रस-परम्परा के अन्तिम आचार्य थे।

ऊपर कहा गया है कि नामवर सिंह पाठनिष्ठ आलोचना से हटकर अपनी विचारधारा अथवा व्यक्तिगत रुचियों को अधिक महत्त्व देते हैं। वे आलोचना में तटस्थता के सिद्धान्त का समर्थन कतई नहीं करते हैं। नामवर सिंह इसीलिए बहुतों के साथ उचित न्याय नहीं कर सके।

अज्ञेय और मुक्तिबोध दोनों अपने समय के हिन्दी के महानतम रचनाकार

हैं। दोनों को आमने-सामने रखकर तुलना करने की बात ही बेमानी लगती है। दोनों की अलग-अलग छवियाँ हैं और अलग-अलग दृष्टियाँ भी। आचार्य रामचन्द्र तिवारी कहते हैं-- 'मुक्तिबोध' की 'एक साहित्यिक की डायरी' में उभरने वाले विलक्षण कवि-व्यक्तित्व की बगल में 'अज्ञेय' के 'आत्मनेपद' से उभरने वाले कवि-व्यक्तित्व को रखकर नामवर सिंह ने मुक्तिबोध के काव्य वैशिष्ट्य को उजागर किया है। नामवर सिंह कहते हैं-- 'अज्ञेय' के 'आत्मनेपद' से बहुत कुछ एक शब्द-साधक एस्थीट अथवा सौन्दर्यजीवी का रूप सामने आता है, जो एक दायरे में जीवन से पूरी तरह संसक्त होते हुए भी अपने रचना- जगत् में सर्वथा निःसंग है : अमानुषिकता की हद को छूने वाली कलात्मक निःसंगता। 'जनतन्त्र और आलोचना' नामक कृति में अशोक वाजपेयी कहते हैं कि -'विकल्पों की सम्भावना जनतंत्र का मूल आधार है।' इसके उत्तर में नामवर सिंह 'वाद-विवाद- संवाद' में कहते हैं --'विकल्पों की सम्भावना अराजकता है।' (हिन्दी आलोचना, पृष्ठ -142)

अशोक बाजपेयी ने आठवें दशक में 'पूर्वग्रह' में उस दौर के बड़े युवा कवियों (बिना नाम लिए) को लक्षित करते हुए कहा था -- 'अगर पिछले कुछ वर्षों की युवा कीर्तियों का जायजा लिया जाए तो यह दिलचस्प तथ्य सामने आता है कि उनमें से ज्यादातर की प्रतिष्ठा उनके कृतित्व के आलोचनात्मक विश्लेषण और मूल्यांकन से नहीं उपजी है, बल्कि उनकी कविताओं पर पर किसी गैर-साहित्यिक एजेंसी द्वारा की गई अपढ़ कल्पनाहीन और लगभग मूर्ख प्रतिक्रियाओं का परिणाम है।'

दूसरी ओर नामवर सिंह ने 'वाद-विवाद- संवाद' में युवा लेखन पर अपनी प्रतिक्रिया में कहा --

'युवा-लेखन कविता और कथा दोनों विधाओं में व्यक्त होने वाला एक समेकित आन्दोलन है, पिछले युग के नवलेखन के समान 'नयी कविता' में कुछ और तथा 'नयी कहानी' में कुछ और जैसा विभक्त और खण्डित युग बोध नहीं।' इस पर आप गौर करें। इन आलोचकों में इस तरह का तोड़-फोड़ प्रायः देखने को मिलता है। ये लोग खॉस विचारधारा के वशीभूत होकर दूसरे को गलत ठहराते हैं। इस तरह का उठाने-गिराने वाला असंतुलन इन लोगों के यहाँ बहुत है और यही इनकी विशेषता भी है।

ऐसे ही संदर्भो को डॉ कृष्णचंद लाल उठा-पटक से जोड़कर देखते हैं। जबकि रामचन्द्र तिवारी की आलोचना सर्वत्र संतुलित है। पद्मश्री सम्मान और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद तिवारी कहते हैं कि-- 'आचार्य रामचन्द्र तिवारी की आलोचना में कहीं भी मत्सर भाव नहीं दिखाई पड़ता है। वे तत्त्वाभिनिवेषी समालोचक थे।'

साहित्य अकादमी एवं हिन्दी विभाग गोरखपुर विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में विश्वविद्यालय के संवाद भवन में 04 अक्टूबर, 2024 को आचार्य रामचन्द्र तिवारी स्मृति शताब्दी समारोह की राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई थी। उसमें मार्क्सवादी समीक्षक डॉ अनिल कुमार राय ने आचार्य रामचन्द्र तिवारी की समीक्षात्मक पुस्तक : 'हिन्दी आलोचना : शिखरों का साक्षात्कार' से संदर्भ ग्रहण करते हुए कहा था -- प्रो. रामचन्द्र तिवारी की आचार्य शुक्ल के साथ कहीं-कहीं असहमति भी है, शुक्ल जी से तिवारी जी टकराते भी हैं, जबकि शुक्ल जी, तिवारी जी के आदर्श हैं। उक्त निबन्ध में आचार्य शुक्ल की लोकमंगल सम्बन्धी प्रसिद्ध अवधारणा का मूल्यांकन करते हुए आचार्य तिवारी ने कहा है- 'शुक्ल जी समाज की एक अत्यन्त जटिल समस्या 'वर्ग - असंतुलन' का समाधान परस्पर सामाजिक सामंजस्य में देख रहे थे, यह भला कैसे सम्भव है ? तिवारी जी प्रश्न करते हैं कि यदि 'राज - सत्ता' समाज के प्रभुत्वकारी शक्तियों के हाथ में हो, तो दमित - शोषित समुदायों की मुक्ति

अपनी समालोचना में नामवर सिंह ने अपनी विचारधारा और अपनी पसन्द के रचनाकारों को अधिक तरजीह दी, उनके लिए तटस्थता और निष्पक्षता कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रही। इसलिए वे अपने समय के अज्ञेय प्रभृति देश के बड़े रचनाकारों के साथ आलोचना में न्याय नहीं कर सके, इसका दर्द अज्ञेय ही नहीं, उनके बाद के देश के जाने-माने साहित्यकार डॉ निर्मल वर्मा एवं डॉ रामदरश मिश्र जैसे अनेक बड़े रचनाकारों को रहा है।

कैसे हो पाएगी ? वे खुद इसका उत्तर देते हुए व्यंग्य करते हैं कि शुक्ल जी इस प्रश्न पर शायद यह कहेंगे कि ब्रह्म की आनंद कला नर के बीच नारायण का रूप धारण कर अवतरित होगी और फिर लोगों की पीड़ा का अंत हो जाएगा।'

डॉ नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा की कृतियों की समीक्षा करते हुए 'एक सौन्दर्योपासक सन्त की दृष्टिपूर्ति पर संवाद' शीर्षक निबन्ध में एक जगह लिखा है-- 'इसे समझाने के लिए निर्मल जी ने सिर्फ रिल्के का नाम टपका देना काफी समझा, जैसा कि वह अक्सर करते हैं-- युक्ति पर वजन रखने के लिए एक बड़ा-सा नाम अनायास प्रसंगवश टपका देना।'

डॉ नामवर सिंह जी के कहने के टोन पर जरा गौर करें। यह केवल मत्सरी समीक्षा ही नहीं है, यह विचारधारा का संघर्ष है, कह लीजिए 'भारतीयता और मार्क्सवाद' के बीच। जबकि यह काम नामवर जी स्वयं भी करते रहे हैं। वे भी जॉर्ज लूकाच, लूसिए गोल्डमान, अडोर्नो, नीत्शे, प्लेखानोव, मिखाईल लिफशित्स, ऑर्किवाल्ड मैक्लीश, रिल्के जैसे पाश्चात्य नामों का उल्लेख करते हैं। खैर, यह कार्य अपनी बातों की पुष्टि के लिए बुरा तो नहीं है, बशर्ते वह आलेख में केन्द्रीय भाव से असंबद्ध न हो अथवा अप्रासंगिक न हो। आजकल तो आलोचना का जो दौर है, वह लगातार प्रश्नों और संदेहों के घेरे में है। उसमें यह बात सामान्य-सी हो गयी है, आजकल के जो नये आलोचक तैयार हुए हैं, वे प्राय: अपनी बात पश्चिम के किसी बड़े विचारक/आलोचक/ रचनाकार से ही शुरू करते हैं, भले ही केन्द्रीय भाव से उसका सीधा सम्बन्ध न हो, भले ही वह नाम लेख में प्रासंगिक न हो। यह फैशन जैसा हो गया है, एकदम अशोभन।

प्रसंगवश एक और घटना का स्मरण हो आया है। पं. विद्यानिवास मिश्र का 'रीतिविज्ञान' शीर्षक से कुछ आलोचनात्मक निबंधों का एक संकलन 1974 में प्रकाशित हुआ था, इस पुस्तक में पंडित विद्यानिवास मिश्र ने जीवन के विविध पक्षों को रीति के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है, जिसमें जीवन का रस, आनन्द, प्रेम और प्रकृति का चित्रण भी शामिल है। 'रीतिविज्ञान' में शैलीगत प्रयोग भी विवेचित है, जिसे पंडित जी संस्कृत के अभिजात प्रभाव और लोकभाषा के गँवई गंध को मिलाकर भाषा का प्रयोग करते हैं। साथ ही इसमें भारतीय साहित्य और संस्कृति के गहरे पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है। डॉ बच्चन सिंह ने उक्त 'रीतिविज्ञान' पुस्तक के प्रकाशन के एकाध साल बाद उसकी तल्ख-समीक्षा की थी (वही डॉ बच्चन सिंह जो 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', 'आलोचक और आलोचना', 'क्रान्तिकारी कवि निराला', और 'हिन्दी आलोचना के बीज शब्द' प्रभृति दर्जनों श्रेष्ठ आलोचनात्मक कृतियों के गहरी अन्तर्दृष्टि के समालोचक रचनाकार हैं)। बच्चन सिंह की वह समीक्षा अभी प्रकाशित नहीं हुई थी। डॉ नामवर सिंह को जैसे ही पता चला कि बच्चन सिंह ने विद्यानिवास मिश्र की 'रीतिविज्ञान' पुस्तक की तल्ख- समीक्षा की है, जो अप्रकाशित है, डॉ बच्चन सिंह के यहाँ पहुँचे और माँगकर पढ़ने के लिए ले गये। तुरंत ही 'आलोचना' के अगले अंक में प्रथम लेख के रूप में छाप दिया बिना पूछे। नामवर जी का यह काम सुशोभन तो नहीं ही कहा जायेगा। हो सकता है कि बच्चन सिंह उस समीक्षा को समय मिलने पर प्रकाशन से पहले दुबारा संशोधित करते। कई बार अपने लेख पर कुछ समय बाद तटस्थ भाव से विचार करने पर रचनाकार द्वारा उसमें आमूल-चूल परिवर्तन करने का मन करता है और रचना यदि प्रकाशित नहीं हुई है तो रचनाकार अपनी ही रचना में आवश्यक बदलाव भी कर देता है, हर बड़े रचनाकार के साथ ऐसा होता है। डॉ बच्चन सिंह को अपनी समीक्षा जब 'आलोचना' में प्रकाशित होने की खबर मिली और उसे पढ़ी तो बच्चन सिंह ने उस पर निम्न शब्दों में प्रतिक्रिया व्यक्त की थी, हू-ब-हू उन्हीं के शब्दों में--- 'नामवर जी स्वयं अपने को विवादास्पद बनाये रखते हैं और अगर कोई दूसरा मिल जाय, तो उसे भी अपनी श्रेणी में घसीट लाते हैं। फिर उन्होंने वागीश शुक्ल से एक लेख मेरे विरुद्ध लिखवाया- असंसदीय शब्दों से भरा हुआ।'

नामवर सिंह इतना ही नहीं करते हैं, उनके लिए वागीश शुक्ल से असंसदीय शब्दों का प्रयोग कराके उस आलेख को प्रकाशित कर उसकी एक प्रति डॉ बच्चन सिंह के पास शिमला भेज दी, उस समय डॉ बच्चन सिंह हिमाचल विश्वविद्यालय शिमला में कुलपति थे। डॉ नामवर सिंह के लेखकीय स्वभाव का एक ऐसा पक्ष भी रहा है।

बच्चन सिंह आगे लिखते हैं-- 'पंडित जी ने कभी उसका जिक्र मुझसे नहीं किया। अब तो यदि

किसी की किताब की प्रतिकूल समीक्षा छप गयी तो वह जन्म भर वैरी बन जाता है। उसके भाई-भतीजे समीक्षक के विरुद्ध पत्रिकाओं में गालियाँ उगलते हैं। राजनीतिक-दलों की तरह भाई-बिरादरीवाद विष की तरह फैलता जा रहा है। पंडित जी से तुलना करने पर -मनुष्य के रूप में तुलना करने पर -यही कहना पड़ता है कि कहाँ राजा भोज, कहाँ गँगुआ तेली।'

(डॉ बच्चन सिंह ने 'लीला का संवरण-समय' शीर्षक अपने एक संस्मरणात्मक आलेख में इस प्रसंग का उल्लेख किया है)

यहाँ पर कोई तर्क कर सकता है कि 'कबीर का अनभै-साँच' पर केंद्रित विचार-प्रसंग में कुछ इधर- उधर की बातें आ गयीं हैं। चूँकि बात आलोचना पर चल रही है और डॉ नामवर सिंह तथा आचार्य रामचन्द्र तिवारी आलोचना के केन्द्र में रहे हैं तो आलोचनात्मक धरातल पर उनसे जुड़ी हुई कुछ नितान्त वास्तविक और जरूरी तथ्यों को सामने लाना जरूरी लगता है।

संस्मरणों में सत्यानुभूति गैरजरूरी तो नहीं है।

हिन्दी के सम्मानित साहित्यकार ओम निश्चल कहते हैं कि 'नामवर सिंह बहुत बड़े अध्यवसायी आलोचक हैं। उनको पढ़ने से आलोचना पटल पर अच्छा ज्ञान मिलता है। 'कविता के प्रतिमान', 'छायावाद', 'इतिहास और आलोचना' व 'दूसरी परम्परा की खोज' उनके दुर्लभ समीक्षात्मक ग्रन्थ हैं, पर हिन्दी आलोचना में उन्होंने वाद चलाया, यह हिन्दी आलोचना का दुःखद पहलू है।'

तटस्थ, संतुलित और निष्पक्ष आलोचना मुझे भाती है, खोज-खोज कर ऐसी समीक्षाएँ पढ़ता हूँ और अवसर मिलने पर ऐसे समीक्षकों को आवश्यकतानुसार उद्धृत करता हूँ। आचार्य रामचन्द्र तिवारी की परम्परा के डॉ कृष्णचंद लाल जैसे विद्वान् आलोचक ने इसीलिए मेरे पोस्ट को पढ़कर अपना विचार दिया है, जिसे यथास्थिति यहाँ पर मैंने प्रस्तुत किया है।

प्रतिष्ठित समीक्षक और व्याख्याता डॉ चित्तरंजन मिश्र ने 'आँखिन देखी आलोचना का विवेक' शीर्षक अपने समीक्षात्मक-संस्मरणात्मक आलेख में उल्लिखित किया है कि 16 फरवरी, 2005 को गोरखपुर में डॉ नामवर सिंह का सम्मान समारोह आयोजित हुआ था। उसमें नामवर जी ने बोलते हुए कहा था --'गोरखपुर के लिए यह गर्व की बात है कि यहाँ डॉ रामचन्द्र तिवारी जैसा समर्थ आलोचक है और मेरे लिए गर्व की बात है कि वे मेरा लिखा एक-एक वाक्य ध्यान से पढ़ते हैं, पर यही सोचकर अब कलम उठाते हुए डर भी लगता है कि जो भी लिखूँगा उसे डॉ रामचन्द्र तिवारी ध्यान से पढ़ेंगे । ऐसे विलक्षण अध्येता हैं आचार्य तिवारी जिनसे सम्मानित होने वाले शिखर भी थर्राते हैं। हिन्दी की समूची भाषा -परम्परा को चाहे वह चिंतन की हो या सृजन की, वह चाहे भारतीय परम्परा पर आधारित हो चाहे पाश्चात्य विचारधारा से अनुप्राणित, बेबाक और तटस्थ ढंग से विश्लेषित करने वाले, उसकी सीमाएँ और सम्भावनाएँ बताने वाले, अप्रतिम आचार्य हैं आचार्य रामचन्द्र तिवारी।'

वैसे तो आचार्य रामचन्द्र तिवारी की तीन दर्जन से अधिक हिन्दी में श्रेष्ठतम आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाशित हैं, पर उनमें जो समीक्षात्मक कृतियाँ हिन्दी के जागरूक पाठकों द्वारा बार-बार पढ़ी-सराही जाती हैं और जो उनकी अक्षय कीर्ति का आधार हैं - उनमें सर्वप्रमुख हैं -'हिन्दी का गद्य साहित्य' , 'कबीर-मीमांसा', 'मध्य युगीन काव्य साधाना', 'हिन्दी आलोचना : शिखरों का साक्षात्कार', 'कबीर और भारतीय संत साहित्य', 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' और 'कथा राम कै गूढ़' आदि। निश्चित रूप से आचार्य रामचन्द्र तिवारी की आलोचना साहित्य-अध्येता में विवेक पैदा करती है। प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ वेदप्रकाश पाण्डेय के निम्न दोहों में तिवारी जी का विराट व्यक्तित्व द्रष्टव्य है --

'रामचन्द्र जी शुक्ल थे,
गुरुवर के आदर्श।
रखकर उनको सामने,
स्वयं बने प्रतिदर्श।।
कबिरा-सा जीवन जिए,
वाणी वही कबीर।
करनी थी आचार्य की,
रहनी मस्त फकीर।।'

निस्संदेह, आचार्य रामचन्द्र तिवारी श्रेष्ठ समीक्षक, श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हैं और श्रेष्ठ मनुष्य के रूप में भी जीवनभर समादृत रहे। वह समीक्षकों और शिक्षकों दोनों के लिए आदर्श हैं।

❋❋

हिंदी ग़ज़ल के सरोकार और डी एम मिश्र की ग़ज़लें

★ डॉ. जीवन सिंह

जन्म : 19 जुलाई 1947
गांव- जुरहरा (भरतपुर) राजस्थान
शिक्षा- पीएच. डी. तक

कविता की लोकप्रकृति,
कविता और कवि कर्म,
शब्द और संस्कृति सहित
आलोचना की, लोकसाहित्य, कविता
और ग़ज़ल पर भी आलोचना की
लगभग दर्जन भर पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान :
कविता और कवि कर्म पुस्तक पर
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
का मीरा सम्मान (2000-2001)

संपर्क :
1/14 अरावली विहार
काला कुआं, अलवर 301001
मोबा. 9785010072

हिंदी में ग़ज़ल का आना हिंदी और उर्दू की दीर्घकालीन समीपता और साहचर्य का परिणाम है, जिनमें भिन्नता और एकता का द्वंद्वात्मक रिश्ता आज तक भी मौजूद है। इस काव्य रूप की अंतर्वस्तु की सबसे बड़ी ख़ासियत इसकी सामासिकता है। यह कहना ग़लत नहीं होगा कि इसने भारत में आकर एक नई सामासिक संस्कृति को विकसित करने का महत्वपूर्ण काम किया। सबसे बड़ा और महत्व का काम इसने यहाँ के हिन्दू-मुसलमानों के हृदयों को मिलाने का किया। इसकी शुरूआत अमीर खुसरो से होती है, जिन्होंने एक बड़े सांस्कृतिक प्रणेता की भूमिका निभाई। माना जाता है कि हिन्दुस्तान में ग़ज़ल की शुरूआत करने वाले अमीर खुसरो थे, जो तेरहवीं सदी के बीच में भारत के ब्रज जनपद के एक गाँव में पैदा हुए थे। चूंकि ये एक शायर और संगीतकार दोनों थे और निजामुद्दीन औलिया के चहेते शागिर्द भी, इसलिए ग़ज़ल यहाँ संगीत और साहित्य की एक मिलीजुली विधा के रूप में विकसित हुई।

हिंदी में ग़ज़ल की बाक़ायदा शुरूआत बीसवीं सदी में महाप्राण निराला से होती है। हिंदी का पदविन्यास और हिंदी इलाके के ज़मीनी जनसरोकार पहली बार उनकी ग़ज़लों में आते हैं। 1943 ई में निराला का एक गीत-ग़ज़ल संग्रह 'बेला' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, इसकी ख़ासियत यह है कि इसमें गीतों के साथ उनकी ग़ज़लें भी हैं। कहना न होगा कि निराला इस काम को कविता के अन्य रूपों के साथ ग़ज़ल में भी करते हैं, इसीलिये हिंदी में ग़ज़ल की शुरूआत करने का श्रेय भी उनको ही जाता है। मसलन काव्य रसिकों की जुबान पर चढ़ा हुआ उनका एक मशहूर शे'र है .....

खुला भेद विजयी कहाए हुए जो
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं।

निराला जी के बाद जानकी वल्लभ शास्त्री जी ने भी ग़ज़लें लिखीं, किन्तु वे उनको पढ़े-लिखे वर्ग की जीवनानुभूतियों से आगे नहीं ले जा पाए। यह काम बलवीर सिंह रंग ने किया जो अभावग्रस्तों - असहायों की तरफ़ से ग़ज़ल में बोलते हैं .....

तुम सबल संभावनाओं के अलम्बरदार लेकिन

हम अभावों में पले हैं, आपको आपत्ति क्या है।

इसके बाद शलभश्रीराम सिंह ने हिंदी और उर्दू को छोड़कर हिन्दुस्तानी ग़ज़ल के पैटर्न को अपनाया,जिसमें उनका झुकाव हिंदी की तरफ रहा और ज़िंदगी के उन सवालों की तरफ जो हिन्दुस्तान के मेहनतकश की संस्कृति की आधारभूमि के निर्माण का काम करते हैं। इसी वातावरण में से दुष्यंत कुमार जैसा एक नया ग़ज़लकार पैदा हुआ, जिसकी ग़ज़लों ने मध्य वर्ग के असंतोष और आक्रोश को वाणी प्रदान की और उनकी ग़ज़लों के अशआर आम मध्य वर्ग के कंठों पर बहुत जल्दी चढ़ भी गए। एक नयी खुशबू इन ग़ज़लों में महसूस हुई और वह अंदाज़ भी जो आमतौर पर ग़ज़ल का अंदाज़ होता है। दुष्यंत कुमार के इस अंदाज़ का सम्मोहनकारी प्रभाव मध्यवर्गीय पाठक-श्रोता पर हुआ। यह दरअसल समकालीन ग़ज़ल का न केवल प्रस्थान बिंदु है, वरन उसकी एक नई आधारभूमि भी है, जो ग़ज़ल के आतंरिक स्वभाव में तबदीली कर उसे व्यक्ति की लोकतांत्रिक चेतना और विवेक से जोड़ देती है। जिसमें जीवन के बुनियादी जनसरोकार हों और जो इस मामले में मध्यवर्गीय जनसरोकारों का अतिक्रमण कर चुकी हो। कहना न होगा कि ग़ज़ल को इस नई भूमि पर लाने वाला एक किसानी नाम सामने आया अदम गोंडवी का, जो ग़ज़ल को मध्यवर्गीय शहरी आवासों से निकालकर गाँवों की झोंपड़ियों और किसानों के घरों में ले गया। दुष्यंत और अदम के बीच में हिंदी ग़ज़लकारों की एक समृद्ध कड़ी मौजूद है लेकिन वह ग़ज़ल को मध्यवर्ग की संकीर्ण और सिकुड़ी हुई भूमि पर ही अपने शैल्पिक अंदाज़ में घुमाने का काम ज्यादा करती है। शिल्प-संरचना और नवीन कल्पनाओं की दृष्टि से दुष्यंत की परम्परा में आने वाले इन ग़ज़लकारों की महत्वपूर्ण भूमिका है किन्तु जनसरोकारों के मामले में वह मध्यवर्गीय जनसरोकारों की गिरफ्त से बाहर नहीं निकल पाती। वह उन बुनियादी जीवन-सरोकारों तक ग़ज़ल को नहीं ला पाते जहां अदम उसको लेकर आ जाते हैं। इसके बावजूद ये मध्यवर्गीय गज़लकार ग़ज़ल को नए-नए अंदाज़ देते हैं, उसको नया शिल्प देते हैं।

इनमें से एक ग़ज़लकार डी एम मिश्र की ग़ज़लों की समकालीनता पर तनिक विस्तार से चर्चा करें। उसके पहले डी एम मिश्र जी की पृष्ठभूमि भी जान लेते हैं। उनकी पहली कविता आगरा से निकलने वाली 'युवक' नामक पत्रिका में 1968 में प्रकाशित हुई थी। इसके हिसाब से उनकी रचनायात्रा की अब तक की अवधि पांच दशक से कुछ अधिक की बैठती है, लेकिन ग़ज़ल लेखन की शुरूआत वे सबसे बाद में 2000 ई के आसपास करते हैं। इससे पहले वे 1968 के आसपास से 2000 ई. तक गीत व कविताएँ लिखते रहे हैं। इस तरह से काव्य रचना की एक सुदृढ़ आधारभूमि पर वे ग़ज़ल लेखन का काम करते हैं। उनको अपने परिवार से साहित्यिक संस्कार के रूप में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' की कविता का संस्कार मिला है, जिसे उन्होंने अपनी समझ और जीवनानुभवों के आधार पर आधुनिक कविता में तब्दील किया। जब वे ग़ज़ल की संगति में आए तो उनको अपने शहर सुल्तानपुर से ग़ज़ल का वह मंच और वातावरण मिला, जिस पर मजरूह सुल्तानपुरी की गहरी छाप होने से इनकार नहीं किया जा सकता। अजमल सुल्तानपुरी और तेवर सुल्तानपुरी की संगत भी उन्होंने की है जिससे सादगी जैसे गुण को उन्होंने कमाया है। यहीं से उनकी ग़ज़ल के कथ्य और भाषा दोनों में भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी और बुनियादी विशेषता .... सामासिकता जैसे गुण का समावेश हुआ है जो आज के समय में विरल होता जा रहा है। ग़ज़ल की इस तरह की सामासिक भाषा का अंदाज़ भी मिश्र जी को इसी संगत और सान्निध्य से मिला है.....

खुदा या तो यही कर दे किनारे पर लगे कश्ती
खुदा या फिर यही कर दे कि साहिल ही बदल जाए

शुरूआत में उनका रवायती यानी पारंपरिक ग़ज़ल पर ही पूरा यकीन रहा। लेकिन यहीं मंचों पर उनको प्रगतिशील और जनवादी तेवर की ग़ज़ल के लिए मशहूर हो चुके अदम गोंडवी का नज़दीकी साथ मिला तो आधुनिक और समकालीन तेवर को बनाने की दिशा में अग्रसर हुए। इसी का परिणाम है उनकी ग़ज़ल का एक नया स्वरुप, जो उनके अब तक प्रकाशित सात ग़ज़ल संग्रहों में से अंतिम पांच संग्रहों

यानी 'आईना-दर-आईना',(2016 में प्रकाशित) 'वो पता ढूंढ़ें हमारा' (2019) तथा 'लेकिन सवाल टेढा है' (2020), 'समकाल की आवाज़' (2022), 'सच कहना अंगारों पर चलना होता है' (2025) में खासतौर से उद्घाटित हुआ है। इनसे पहले वे 2006 में 'उजाले का सफर' और 2012 में 'रोशनी का कारवाँ' प्रकाशित करा चुके थे। जो बहुत चर्चा में नहीं आ पाए थे।

ग़ज़ल संग्रह 'लेकिन सवाल टेढ़ा है' की पहली ग़ज़ल का उनका एक शेर है :

न मैं कबीर न ग़ालिब न मीर न मोमिन ही
मिला जो जख्म जमाने से वही गाता हूँ।

डी एम मिश्र कहते हैं कि ग़ज़ल कुछ ऐसी होनी चाहिए कि उसमें से मिट्टी की महक आए और ऐसा लगे कि जैसे गेहूँ की बाल में से किसी सुन्दरी के कंगन की खनक आ रही है। गेहूँ की बाल में से कंगन की खनक आना सौन्दर्य के आभिजात्य से अलग उसकी साधारणता का वह नया रास्ता है जो लोकतांत्रिक समय में लोकतान्त्रिक जीवन मूल्यों के प्रति सजग रहने से ही आता है। इस तरह मिश्र जी अपनी ग़ज़लों में मेहनत और सौंदर्य दोनों का मेल कराते हुए उसके आभिजात्य से अलगकर उसे साधारण से मिलाते हैं। साधारण के सौन्दर्य को उद्घाटित करना ही इस युग की समकालीनता है। यह उन प्रेमचंद का रास्ता भी है, जो लगभग एक सदी पहले सौन्दर्य की पुरानी कसौटी को बदलने की सलाह साहित्यकारों को दे रहे थे। सौन्दर्य की कसौटी बदलना यद्यपि कोई आसान काम नहीं है। मिश्र जी इस जीवन तथ्य से भी वाकिफ़ हैं कि समाज में पूंजीपति और शासक वर्ग त्याग करने की बजाय भोग करने में अधिक विश्वास रखता है, उसके पास समाज से लिया हुआ इतना सरप्लस होता है, जिसमें से वह जौ के बराबर ही यदा कदा त्याग करता है। फिर भी उसके पास इतना बच जाता है कि वह उसकी सौ पुश्तों से भी नहीं बीतता। सच तो यह है कि समाज में उसका कमजोर वर्ग ही ज़िंदगी भर त्याग करता रहता है। वह अपने श्रम से जितना कुछ अर्जित करता है वह सब दूसरों के हिस्से चला जाता है। उसके श्रम के सरपल्स से ही पूंजीपति वर्ग पूंजी का एकछत्र स्वामी बनता जाता है। अत: मिश्र जी का यह कहना (आईना-दर-आईना में) उनकी गहरी समझदारी का सूचक है कि वे अपनी ग़ज़लों में कमजोर वर्ग के त्याग जैसे जीवन मूल्य को रेखांकित करते हैं ...

कितने अमीर होंगे दस बीस फीसदी बस
कमजोर आदमी का मैं त्याग लिख रहा हूँ

यह उनकी पक्षधरता का भी एक सबूत है जिसमें वे समाज के ताकतवर अमीर वर्ग के सामने कमजोर के पक्ष से लिख रहे हैं। यह चुनाव आसान नहीं होता। लोग तो ताकतवर के पक्ष में खड़े रहने को ही समझदारी मानते हैं किन्तु यह कैसा कवि है जो अपनी ग़ज़ल में कमज़ोर की बात कर रहा है, उसके त्याग को रेखांकित कर रहा है। यह समाज में खींची गयी लीक को तोड़कर चलने जैसा काम है। इस तरह के अनेक जीवन-प्रसंग मिश्र जी की ग़ज़लों की अंतर्वस्तु का निर्माण करते हैं।यह एक जीवन-द्वंद्व है, जिसमें कवि को अपना पक्ष चुनना ही पड़ता है, जो इस द्वंद्व से बचकर तटस्थता का वरण करते हैं, वे शब्द-चमत्कार दिखलाकर काव्य-भ्रम जरूर पैदा कर सकते हैं, किन्तु अपने समय की शायरी से वे महरूम रहते हैं।

यहाँ पर यह बतलाना गलत नहीं होगा कि मिश्र जी ने उर्दू-फारसी के लोकप्रचलित यानी आमफहम शब्दों का प्रयोग करते हुए हिंदी भाषा की प्रकृति और विन्यास के अनुसार ग़ज़लें लिखी हैं, इसलिए उनका मिज़ाज हिंदी की तरफ़ झुका हुआ है, किन्तु उसका जो व्याकरण और अनुशासन है वह फारसी और उर्दू से होता हुआ अपनी सहोदरी हिंदी तक आया है। बहर के अनुशासन को मानते हुए भी उनके सामने कई स्थानों पर बहर का संकट भी उपस्थित हुआ है। जहां पर उन्होंने हिंदी की अपनी शब्दप्रकृति के अनुसार कुछ छूट भी ली है, ताकि शब्द और अर्थ दोनों के सौन्दर्य की संगति बनी रहे। मिश्र जी की ख़ासियत यह है कि उन्होंने ग़ज़ल के अपने छंदीय अनुशासन का निर्वाह करने की पूरी कोशिश की है, किन्तु हिंदी और उर्दू के शब्दोच्चारण की भाषिक प्रकृति अलग-अलग होने के कारण कुछ जगहों पर ऐसी दुविधा भी उत्पन्न हुई हैं, जहां शब्द की हिंदी प्रकृति होने की वजह से बहर भंग होने का दोष भी आ गया है। यह सच है

कि हिंदी-उर्दू सहोदरी हैं और दोनों का व्याकरण भी लगभग एक जैसा ही है, किन्तु लिपि और कुछ शब्दोच्चारण के फर्क से उसकी संगीतात्मकता में फर्क आ जाता है। जैस- किसी को इस शेर में *'फैलुन' दोष नज़र आ सकता है।*

बोझ धान का लेकर वो जब हौले - हौले चलती है धान की बाली, कान की बाली दोनों संग-संग बजती है।

जैसे-जैसे मिश्र जी की ग़ज़ल-यात्रा आगे बढ़ती है वैसे-वैसे उनमें कई तरह के बदलाव भी होते हैं। शुरूआत में वे मंचीय प्रभाव से वैयक्तिक सौन्दर्यानुभूति की रवायती ग़ज़लें भी खूब कहते रहे हैं, जिसे उन्होंने कभी पूरी तरह से छोड़ा नहीं। किन्तु इनमें भी वे पूरी तरह से रवायती नहीं रह पाते। यहाँ भी वे अपनी सौन्दर्यानुभूति में ज़िंदगी के श्रम..सौन्दर्य से संबंधित किसानी सरोकारों को जब संयुक्त करते हैं तो ग़ज़ल की प्रकृति ही बदल जाती है। उसमें नयापन आ जाता है। मसलन उनकी एक ग़ज़ल मंचों पर और पाठकों में बहुत लोकप्रिय हुई और कई गायकों ने उसे खूब गाई भी है..

कभी लौ का इधर जाना, कभी लौ का उधर जाना
दिये का खेल है तूफ़ान से अक्सर गुजर जाना

रूप का ऐसा गतिशील बिंब इस बात का सूचक है कि कवि ने उसकी नाज़ुक और नफासत की लीक से अलग हटकर सौन्दर्य को तूफ़ान की स्थितियों से भी जोड़कर देखा है, जो इस नए ज़माने में ही संभव था। अपने पहले दौर में वे सौन्दर्यानुभूति के सरोकारों को लाते हैं और यहीं से वे अपने सरोकारों को सामाजिक...राजनीतिक सरोकारों के यथार्थ से जोड़ देते हैं। इस प्रक्रिया में वे कई बार तो सपाट प्रकृति की राजनीतिक गज़लें भी कहने लगते हैं। इस तरह से वे ग़ज़ल के लिए अपनी एक अलग से पुख्ता जमीन तैयार करते हैं और अपने साथी अदम गोंडवी जैसे ग़ज़लकारों के असर से ग़ज़ल को शहर के पूँजीकेंद्रित आभिजात्य और चमक-दमक की बारीकियों से बचाकर इंसानियत के तकाजे से वहाँ ले आते हैं जहां उसका दम घुटने से उसे बचाया जा सके। वास्तव में मिश्र जी की ग़ज़ल का रास्ता लोकप्रियता और शास्त्रीयता के बीच से कहीं होकर जाता है:

तमाशा देखना हो तो ज़माना दौड़ आता है
लगे जब आग बस्ती में तो दरिया सूख जाता है
न दें गर साथ सूरज-चाँद तो मायूस मत होना
अभी घनघोर जंगल में भी जुगनू टिमटिमाता है।

मिश्र जी के यहां मिथकों का आधुनिक व्यंजना में प्रयोग ग़ज़ल की अनेकार्थक सटीकता को कुछ इस तरह से व्यक्त करता है- कृष्ण द्वारा जनविरोधी कालिया नाग को नाथ देने की भागवत कथा को कौन नहीं जानता, किंतु वह नाग आज भी हमारे आसपास मौजूद हैं। मिश्र जी का इसी ग़ज़ल का दूसरा शेर इस बात को बेहद सादगी से रख देता है। वे कहते हैं-

देख लूं कितना ज़हर है कालिए में
चढ़ के उसके शीश पर मुरली बजाऊं।
शायर का फ़र्ज़ भी वे सच दिखाने को ही मानते हैं। इसलिए कहते हैं
सच दिखाना फर्ज़ मेरा क्या करूं मैं
आइना हूँ मैं भले ही टूट जाऊँ।

डीएम मिश्र की ग़ज़ल के सरोकारों में मौजूदा समय का सामान्य जन और उसके गहरे त्रास हैं जो गैरबराबरी और अन्याय से जन्में हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी लगातार नाइंसाफी बढ़ती ही जा रही है, यह अहसास इस ग़ज़ल संग्रह के केंद्र में नज़र आता है जब वे एक शेर में इस तरह से अपनी बात रखते हैं ...

हम भी प्रश्न उठाते नाइंसाफी का
अगर खुदा तक जाने की सुविधा होती

मिश्र जी ने अपनी ग़ज़ल को समकालीन बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। वे आज की दुनिया के मनोविज्ञान को खंगालते हुए उसकी शाखा-प्रशाखाओं से होते हुए उसको फैलाते चलते हैं लेकिन ग़ज़ल के भाषा-शिल्प में व्यक्त होने वाले उसके सामासिक पहलू की अनदेखी कर शुद्धतावादी रुख अख्तियार नहीं करते। यहां उर्दू और हिंदी सहोदरा की तरह प्यार करती हुई नज़र आती हैं जो भारतीय संस्कृति का एक बड़ा और महत्वपूर्ण पहलू रहा है और आज भी है।

❋❋

लघुकथा सिर्फ लघुकाय नहीं होती !

★ राजेन्द्र सिंह गहलोत

शिक्षा :
एम.ए.(हिन्दी साहित्य एवं समाज शास्त्र)ए एल एल. बी.
प्रकाशन :
कहानी संग्रह 'काले पन्नों पर लिखी इबारत', 'नाम में क्या रखा है' तथा 'मासूम' प्रकाशित। आलेख संग्रह 'इस हमाम में. ....' 'असहमति के स्वर' तथा 'पाठकीय अभिरुचि और साहित्य' एवं व्यंग्य-संग्रह- 'भाई बडी पालिटिक्स है' प्रकाशित।
पुरस्कार/सम्मान :
रेखा सक्सेना स्मृति पुरस्कार मुंबई , सोच-विचार ग्राम्य कथा प्रतियोगिता बनारस सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

सम्पर्क :
सुभद्रा कुटी
बस स्टैंड के सामने
बुढार-484110
जिला -शहडोल (म. प्र.)
मोबाइल: 9329562110

वर्तमान लेखन के संदर्भ में जब भी लघुकथा की बात की जाती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान के लघु कथाकारों का सामान्यत: पूरा ध्यान उस के लघु आकार पर ही केन्द्रित हो गया है, जिसके चलते छोटी से छोटी लघुकथा लिखने के प्रयास में एक दो पंक्तियों के संवादो या आत्मकथ्यो को भी यदा-कदा लघुकथा के रुप में वर्तमान साहित्य में प्रस्तुत कर दिया जाता है। जबकि 'लघुकथा' में लघु के साथ ही कथा शब्द भी जुड़ा हुआ है । अत: ऐसी कथा जो आकार में तो लघु हो लेकिन उसमें कथा के तत्त्व निहित हों, उसे लघुकथा कहा जा सकता है । कथा के मुख्य तत्त्व कथावस्तु, पात्र, संवाद, उद्देश्य और शैली माने जाते हैं। इनमें से रोचक कथानक, समाजोपयोगी कथ्य, पात्र तथा प्रभावशाली शिल्प लघुकथा में तो होना ही चाहिये । अत: हम कह सकते हैं कि "अपने लघु आकार में प्रभावशाली एवं समाजोपयोगी कथ्य साहित्य की जिस विधा में रोचक कथानक तथा विशिष्ट शिल्प में प्रस्तुत हो, वह लघु कथा है ।" जबकि वर्तमान में, विशेष तौर पर प्रगतिशील साहित्य में यदा-कदा सिर्फ वाद, विमर्श एवं विशेष विचारधारा कोटेड कथ्य की ही प्रस्तुति, लघुकथाओं में होती दिखलाई पड रही है जिनमें अक्सर एक रोचक कथानक का अभाव दृष्टिगोचर होता है । दूसरी ओर लघु कथाकारों को लघुकथा के कथानक का ताना-बाना बुनते समय उसके आकार में वृद्धि होने का खतरा नजर आने लगता है । ऐसी स्थिति में लघुकथा की शब्द सीमा निर्धारित की जानी चाहिए । इस संबंध में कुछ विद्वानों ने लघुकथा की शब्द सीमा 1000 से 7500 शब्दो की निर्धारित की है। उस शब्द सीमा के बाद संभवत: सामान्य कहानी प्रारंभ हो जाती है जिसकी यद्यपि शब्द सीमा निर्धारित नहीं है लेकिन उसका आकार लघु उपन्यास से तो कम ही होना चाहिये ।

लघुकथा पर चर्चा को आगे बढ़ाने के पहले लघुकथा के इतिहास पर एक नजर डालना जरुरी हो जाता है । पाश्चात्य साहित्य में लघुकथा को सर्वप्रथम आधुनिक रूप में एडगर एलन पो (1809-1849) ने प्रस्तुत किया था । उसके बाद चेखव (1860-1904) तथा ओ हेनरी (1862-1910) की लघुकथाओं को इस क्रम मे रखा जा सकता है जिनमें से कुछ लघुकथाएँ इस कदर साहित्य जगत में सराही गईं कि वे कालजयी बन गईं । जबकि प्रथम

लघुकथा के रुप में रिचर्ड कंबरलैंड यू. के. की "दी पाइजनर आफ मान्टेमोस" (1791) की गाथिका कहानियां, अमेरिका के नाथनियल हाथोर्न की लघुकथा "ट्वाइस टोल्ड (1837)", इस की दंत कथाएँ, गाई डी मोपासा की "दी नेकलेस" आदि लघुकथाओं का नाम लिया जा सकता है ।

भारतीय परिवेश में लोक जगत में कहानी के साथ ही लघुकथा भी लिपि के जन्म के पहले से ही अस्तित्व में आ गई थी, जो कि कही और सुनी जाती थी । काल्पनिक कथावस्तु वाली "गल्प" से लघुकथा भी जन्मी है । वाचिक रूप में "गल्प" का ही अपभ्रंश शायद "गप्प" है जिसे हांकने में लोक जगत माहिर रहा है तथा उसी से न जाने कितनी लघुकथाएँ जन्मती रहीं तथा हास्यपरक गप्प से ही शायद चुटकुला जन्मा । लोक जगत में लंबी कहानियों के साथ ही लघुकथाएँ भी प्रचुर मात्रा में सदा से उपलब्ध रहीं, विशेष रूप से अकबर बीरबल, शेखचिल्ली, लाल बुझक्कड, गोनू झा, गोपाल भांड आदि की कहानियों में काफी तादाद में लघुकथाएँ भी निहित हैं । संस्कृत साहित्य में लघुकथा छोटी कहानी के रूप में दिखलाई पड़ती है तथा इसका आदि स्वरूप ऋग्वेद एवं महाभारत, उपनिषदों, मिथको मे भी दृष्टिगोचर होता है । जबकि संस्कृत साहित्य में लघुकथाएँ धर्म एवं नीति की शिक्षा देती भी दिखलाई पड़ती हैं । इस संदर्भ में "पंचतंत्र की कहानियाँ", "जातक कथाएँ", "कथा सरित्सागर", "हितोपदेश" आदि की लघुकथाओं का जिक्र किया जा सकता है ।

हिन्दी साहित्य जगत में लिपि के जन्मने के बाद कहानियों के साथ ही "लघुकथा" भी लिखी जाने लगी। आधुनिक हिन्दी के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् 1875 से सन् 1880 के बीच हँसी, दिल्लगी, पंच आदि से संबंधित रचनाएँ लिखी थीं जिनका संग्रह "परिहासिनी" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था । उसमें संग्रहित रचनाओं में से "अंगहीन धनी" तथा "अद्भुत संवाद" को कुछ विद्वान प्रथम लघुकथा मानते हैं जिनमें धनाढ्य वर्ग के प्रति तीखा कटाक्ष है । जबकि कई विद्वान "छत्तीसगढ़ मित्र" में सन् 1901 में प्रकाशित माधव राव सप्रे की कहानी "एक टोकरी भर मिट्टी" को पहली लघुकथा मानते हैं जिसे कि हिन्दी की पहली कहानी भी माना गया था लेकिन बाद में उसके लघु आकार को देखते हुए ही शायद उसे पहली लघुकथा माना गया । हिन्दी की प्रथम 10 लघु कथाओं में -(1) अंगहीन धनी (1876)- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (2) एक टोकरी भर मिट्टी (1901)- माधवराव सप्रे (3) विमाता (1915)- छबीले लाल गोस्वामी (4)- झलमला (1916)- पदुमलाल पुन्नालाल बख्सी (5) दरवाजा (1917)- प्रेमचंद (6)- बूढा व्यापारी (1919)- जगदीश चन्द्र मिश्र (7) न्याय का घंटा (1922)-चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (8) बड़ा क्या है (1926)- हजारी प्रसाद द्विवेदी (9) प्रतिध्वनि (1926)-जयशंकर प्रसाद (10) बेबी (1928)- आचार्य रामचंद्र श्रीवास्तव का नाम लिया जा सकता है ।

लघुकथा और कहानी में मुख्य अंतर आकार (लंबाई), संरचना, उद्देश्य तथा पात्र में दृष्टिगोचर होता है । लघुकथा आकार में छोटी होती है उसमें पात्रों की संख्या कम होती है। वे अक्सर एक घटना, विचार या विशेष संदेश देने पर केंद्रित होती है। जबकि कहानी का फलक विस्तृत होता है। उसका विशाल तथा जटिल कथानक हो सकता है जिसके पात्र भी अधिक हो सकते हैं। वर्तमान की लंबी कहानियों में तो अलग-अलग पात्रों की कहानियां एक ही कथानक में प्रस्तुत होती हैं । दूसरी ओर पाश्चात्य शिल्प के अनुकरण एवं जटिल फैंटेसी से वर्तमान कहानियां आम पाठकों हेतु अबोधगम्य होती जा रही हैं जबकि लघुकथाएं अपने छोटे आकार और सहज सरल स्वरुप में हर वर्ग के पाठकों हेतु बोधगम्य एवं पठनीय हैं। लेकिन यथार्थवाद, विमर्शप्रियता एवं विशेष विचारधारा के प्रति रूझान के चलते जिस भांति कहानियों की विषयवस्तु एक सीमित दायरे में कैद होकर रह गई, उसी भांति लघुकथाओं की विषयवस्तु भी एक सीमित दायरे में कैद होती जा रही है जिससे कि उसकी विस्तृत विषयवस्तु और शैलियां उपेक्षित हो रही हैं ।

अगर वैश्विक स्तर पर लघु कथाओं एवं छोटी कहानियों की विभिन्न शैलियों पर गौर करें तो निम्न शैलियों की तरफ हमारा ध्यान जाता है -

काल्पनिक (फैंटेसी) - बतौर

उदाहरण आंद्रेज सैपकोव्स्की की कृति "दी लास्ट विश"।

रहस्य (किसी पहेली या अपराध को सुलझाना) - बतौर उदाहरण सर आर्थर कानन डायल की कृति "द एडवेंचर आफ द स्पेकल्ड बैंड" ।

प्रणय, रोमांस - बतौर उदाहरण ओ हेनरी की कृति "गिफ्ट आफ दी मैर्गी।

कल्पित विज्ञान कथा - रे ब्रैडवरी की कृति "द वेल्डर"।

हारर (डरावनी)- एडगर एलन पो की कृति "द टेल हार्ट"।

क्या हिन्दी लघुकथाओ में इन शैलियों, विषयवस्तुओं पर लिखा जा रहा है ? यदि नहीं तो क्यों ? इसके अतिरिक्त इतिहास एवं धर्म (मिथक) तथा हास्य व्यंग्य से संबंधित भी लघुकथाएं क्या नहीं लिखी जानी चाहिए ?

वर्तमान साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रारंभ में तो ऐसा प्रतीत हुआ कि लघुकथाएं सिर्फ पृष्ठ में किसी रचना के बाद बची हुई जगह की पूर्ति के लिए उपयोग की जा रही हैं लेकिन बाद में साहित्यिक पत्रिकाओं ने लघु कथाओं को गंभीरता से लेना प्रारंभ कर दिया । कई साहित्यिक पत्रिकाओं के लघुकथा विशेषांक प्रकाशित हुये तथा लगातार प्रकाशित हो रहे हैं । संभवत: प्रथम लघुकथा पत्रिका के रुप में इन्दौर से, सतीश दुबे एवं विक्रम सोनी के संपादन में प्रकाशित "लघु आघात" पत्रिका का नाम लिया जा सकता है, साथ ही सन् 1883 से इंदौर से ही सतीश राठी के संपादन मे लगातार प्रकाशित "क्षितिज" लघुकथा पत्रिका का जिक्र किया जा सकता है । जबकि प्रतिष्ठित लघुकथाकार मधुदीप ने लघु कथाओं की समीक्षा के संदर्भ में काम करते हुये दिशा प्रकाशन से "पडाव और पड़ताल" शीर्षक से 34 खंडों की एक श्रृंखला तथा "कालजयी लघुकथायें" शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी । लघुकथाओं के इतिहास तथा लघुकथा को विस्तार से विश्लेषित करते हुये बलराम अग्रवाल ने "वर्तमान साहित्य" पत्रिका में तथा सतीश राठी ने "आजकल" पत्रिका में दो महत्त्वपूर्ण शोधपरक आलेख लिखे । जबकि सुकेश सहानी लघुकथा विधा को प्रतिष्ठाजनक मुकाम तक पहुँचाने हेतु कृत-संकल्प हैं । वे "लघुकथा डॉट काम" के माध्यम से महत्त्वपूर्ण कार्य तो कर ही रहे हैं साथ ही हर वर्ष प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका "कथादेश" के माध्यम से "अंतरराष्ट्रीय लघुकथा प्रतियोगिता" का भी आयोजन करते हैं । बहुत सारे लेखकों ने बतौर "लघुकथाकार" अपनी एक अलग पहचान बनाई है जिनमें से मार्टिन जांन का नाम सर्वोपरि है । लघुकथाओं की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए कई प्रतिष्ठित कहानीकार एवं उपन्यासकार भी लघुकथा लेखन की तरफ प्रवृत्त हुए जिनमें से प्रतिष्ठित कहानीकार महावीर राजी का नाम लिया जा सकता है जिनने कई लघुकथाएं लिखीं तथा उनकी लिखी लघुकथा "रावण" तथा "चिनक" कथादेश द्वारा आयोजित "अखिल भारतीय लघुकथा प्रतियोगिता" में सन् 2020 एवं सन् 2023 में पुरस्कृत भी की गई ।

जरूरी है कि वर्तमान के लघुकथाकार अपने द्वारा सृजित लघुकथाओं को वादमुग्धता, विमर्शप्रियता तथा विशेष विचारधारा के चक्रव्यूह में उलझने से बचाते हुये, आम पाठकों की ग्राह्यता, पठनीयता एवं बोधगम्यता के अनुरूप तथा रोचक कथानक एवं प्रभावशाली शिल्प में लघुकथाएँ लिखें। लघुकथा की विषयवस्तु सीमित दायरे में कैद न हो बल्कि वह स्वतंत्र परिंदे की तरह कल्पना के गगन में ऊंची उड़ान भरे तो यथार्थ के धरातल में ही बसेरा करे । उसका कथ्य रोचकता के साथ ही समाजोपयोगी भी हो । इन सबके साथ ही यह भी गौरतलब है कि "साहित्यिक अभिरुचि के संवर्धन में ही साहित्य का जीवन है ।" अत: ऐसी लघुकथाएं लिखी जाएँ जो पाठकों की साहित्यिक अभिरुचि को संवर्धित कर सकें । यदि ऐसा हुआ तो भविष्य में लघुकथा साहित्य की सभी विधाओं को पीछे छोड़ती हुई सर्वाधिक लोकप्रिय एवं समाजोपयोगी साबित होगी । वर्तमान के भौतिकवादी युग की गहमागहमी में साहित्य के पाठकों के पास न लंबी कहानी और उपन्यास को पढ़ने की फुर्सत है और ना ही नई कविता को समझने का समय, ऐसी स्थिति में "लघुकथाएं" ही आम पाठकों के बीच साहित्य की पाठकीय अभिरुचि को संवर्धित करती हुई लोकप्रियता के साथ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगी ।

❋❋

रागनी और रणभूमिः हरियाणवी काव्यरूप में युद्ध प्रसंग

* योगेश डागर

युद्ध मानव इतिहास की सबसे निर्णायक घटनाओं में से एक है। हर बड़े युद्ध ने समाज, राजनीति और संस्कृति की दिशा बदली है। युद्ध केवल विजय या पराजय का प्रसंग नहीं होता। यह वीरता, बलिदान, दुःख, वियोग, पीड़ा और आशा का भी अनुभव कराता है। साहित्य इन भावनाओं को शब्द देता है, ऐतिहासिक अनुभव को संरक्षित करता है और अगली पीढ़ी तक पहुँचाता है।

हरियाणा की भूमि युद्धों और वीरगाथाओं की साक्षी रही है। महाभारत का पवित्र कुरुक्षेत्र इसी प्रदेश में स्थित है, जहाँ धर्म और अधर्म का महा-संग्राम लड़ा गया। मध्यकाल में पानीपत के तीन प्रसिद्ध युद्ध यहीं हुए। स्वतंत्रता संग्राम में हरियाणावासियों का योगदान, साथ ही विश्वयुद्धों और आधुनिक युग में भारत-चीन, भारत-पाक युद्ध में यहाँ के सैनिकों का अदम्य साहस और बलिदान इतिहास के स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। यही कारण है कि महाभारत से लेकर स्वतंत्रता संग्राम की कविताओं और आधुनिक युद्धों की रागनियों तक, हरियाणवी साहित्य और युद्ध का संबंध गहराई से देखा जा सकता है।

हरियाणवी रागनी केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रही, बल्कि इसने समय-समय पर समाज में देशभक्ति, साहस, बलिदान और एकता की भावना का संचार किया है। इस शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य हरियाणवी रागनी साहित्य में युद्ध संबंधी विषयवस्तु को प्रकाश में लाना और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व को उजागर करना है।

सम्पर्क :
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
पता- मकान न. 26, नजदीक दादा बूढ़ा मंदिर, गाँव ईसापुर, नई दिल्ली-110073
ईमेलः researchragni@gmail.com

रागनियों में पौराणिक युद्धों का चित्रण-

हरियाणवी सांग-रागनी साहित्य में पौराणिक युद्धों का चित्रण विशेष महत्व रखता है। 'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय संस्कृति के सबसे प्राचीन और प्रभावशाली महाकाव्य हैं। इन महाकाव्यों पर आधारित कथानकों को हरियाणवी कवियों ने अपनी रचनओं में पर्याप्त स्थान दिया है। महाभारत के विविध प्रसंगों पर अनेक कवियों ने अपनी रचनात्मकता को 'चीर पर्व', 'कीचक वध', 'द्रोण पर्व' नामक किस्सों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इन किस्सों में केवल युद्ध और पराक्रम का वर्णन नहीं, बल्कि नारी सम्मान, धर्म-पालन और नीति के आदर्शो की अभिव्यक्ति भी दिखाई देती है। महाभारत पर आधारित रागनियों में कुरुक्षेत्र

की रणभूमि का सजीव वर्णन मिलता है। उदाहरणस्वरूप पं. महोर सिंह गौड़ कृत किस्सा 'जंग चक्रव्यूह कथा' की एक रागनी का अंश प्रस्तुत है।

"चढ़े सब राजा दल का व्यूह बनाय।
उस रथ के अग्रभाग के रक्षक महाबली भीम गदाधारी,
सात्यकी धनुर्धर धृष्टद्युम्न घोड़ों के रक्षाकारी,
माद्री कुमार रथचक्रों के रक्षक सेना संग न्यारी न्यारी,
रथ के ऊपर की वीर घड़ूका नै ओटी चोकीदारी,
रथ पीछे पाँचों द्रोपदी कुमार अभिमन्यु कुँवर के सहचारी,
व्यूह रचना से अभिमन्यु के रथ का बंदोबस्त किया बड़ा भारी,
चक्रव्यूह पर धावा कीन्हा रण बाजा बजवाय।।"

सत्यवान शर्मा, काव्यसंगीतमणि, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, प्रथम संस्करण- 2022, पृष्ठ संख्या- 406

रागनियों में मध्यकालीन युद्धों का चित्रण

मध्यकालीन इतिहास में हरियाणा की भूमि अनेक निर्णायक युद्धों की साक्षी रही है, जिनमें तराइन के दो तथा पानीपत के तीन युद्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। तराइन के युद्ध पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी के बीच लड़ा गया था। इस युद्ध की पृष्ठभूमि पर कवि मुंशीराम जांडली ने 13 रागनियों का 'कथा पृथ्वीराज चौहान' किस्सा लिखा। जिसकी एक रागनी में शब्द-भेदी बाण से पृथ्वीराज द्वारा गौरी की मृत्यु को इस प्रकार वर्णित किया है -

"सागी बाण शब्द-भेदी दे दिया राजा नै ल्याकै ।
अंधा पृथ्वीराज धनुष तै बस होग्या कमजोरी कै।
ग्यारा सेर का बाण मंगा कै शिखर चढ़ा दिया डोरी कै
सीध बांध कै मार्या निशाना जा लाग्या मोहम्मद गौरी कै।
घिंटी म्हं को पार लिकड़ग्या गड़ग्या फर्श गिलोरी कै।
लाग्या तीर होश गुम होगे पड़या सामणै आकै।
अंधा पृथ्वीराज धनुष नै खड्डा किले म्हं ठा कै ।।"

डॉ राजेन्द्र बड़गूजर, मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, अक्षरधाम प्रकाशन, कैथल, प्रथम संस्करण- 2015, पृष्ठ संख्या- 207

इन किस्सों और रागनियों में ऐतिहासिक पुरुषों की केवल वीरता का बखान नहीं किया है बल्कि उनके भीतर के भावनात्मक पक्ष को भी प्रकट किया गया है। कवि सूरजभान बिबियान कृत "महाराणा प्रताप सिंह सांग" में जब महाराणा प्रताप का घोड़ा चेतक नदी पार करते हुए दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है और मरणासन्न हो जाता है तो राणा प्रताप को अत्यधिक दु:ख पहुँचता है। राणा प्रताप को ऐसा लगता है कि उनका कोई सगा बिछुड़ गया और वह फूट-फूट कर रोता है। कवि के शब्दों में -

"चेतक तेरे जैसा यार आज तलक पाया ना।
देख अकेला तेरे बिना किसी और का साया ना।
सुण विधाता आज मेरे क्यूँ किस्मत नै फोड़े सै।
चेतक चाल खड़ा हो ले इब क्यूँ मुँह मोड़े सै।"

डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, सांगी सूरजभान बिबियान रचनावली, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण- 2023, पृष्ठ संख्या- 34

विश्व युद्ध और हरियाणवी रागनी

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध हुए, तब हरियाणा क्षेत्र के अनेक युवक ब्रिटिश भारतीय सेना में भर्ती हुए थे। उस समय काव्यरूप रागनी एक प्रतिष्ठित विधा के रूप में स्थापित हो चुकी थी और जनता तक सीधा प्रभाव डालने में सक्षम थी। अत: अंग्रेज शासकों ने इसके सामाजिक प्रभाव को पहचानते हुए स्थानीय कवियों को ऐसी रचनाएँ करने के लिए प्रोत्साहित किया, जिनसे युवाओं को सेना में भर्ती होने की प्रेरणा मिले। इसी परिप्रेक्ष्य में कवि दीपचंद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सरकार के अनुरोध पर पं. दीपचन्द ने यह बीड़ा उठाया। उनके गीतों ने जनमानस में रणभेरी का काम किया। हरियाणा के लोग मन्त्रमुग्ध मधुमक्षिकाओं की भाँति धड़ाधड़ सेना में भर्ती होने लगे। उनके एक गीत की ये पंक्तियाँ हरियाणा के नवयुवकों के लिए मानो सम्मोहन मन्त्र बन गई-

"भरती हो त्यो रै थारै बाह्द खड़े रंगरूट
इत राखो मध्म बाणा, अर्द्धमिलता फटज्ड पुराणा

उत मिल्लेंगे फुल बूट, भरती हो ल्यो रै... "

डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणवी सांग : एक परिशीलन, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला, प्रथम संस्करण - 2021, पृष्ठ संख्या - 116

साथ ही कुछ कवियों ने स्वयं युद्ध का अनुभव किया और उसे अपनी रचनाओं में सजीव रूप से प्रस्तुत किया। इनमें फौजी मेहर सिंह प्रमुख हैं, जिन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लेकर मोर्चे की परिस्थितियों, सैनिकों के संघर्ष और संवेदनाओं का यथार्थ चित्रण किया है। कवि मेहर सिंह ने अपनी रागनियों में सैनिकों को नायकों के रूप में नहीं, बल्कि परिस्थितियों से जूझते हुए व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया है -

"इबकै नाम लोट म्हं आग्या तैं पड़ै मिसन म्हं जाणा
ऊपर तैं हो हवाई हमले पाहड़ां म्हं ल्हुक जाणा
बैठ जहाज म्हं सफर करै उड़ै चाय बिस्कुट का खाणा
मरनै म्हं कुछ कसर रही ना वापिस मुश्किल आणा
कहै मेहर सिंह उल्टे आग्ये तै सोवैंगे महल अटारी ।"

रामफल चहल, फौजी मेहर सिंह की रागनियाँ, सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, प्रथम संस्करण - 2007, पृष्ठ संख्या - 78

स्वतंत्रता संग्राम और रागनी साहित्य

हरियाणवी रागनी साहित्य में स्वतंत्रता संग्राम का व्यापक और भावनात्मक चित्रण मिलता है। अनेक कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से स्वतंत्रता सेनानियों के आदर्श, त्याग और देशभक्ति को अभिव्यक्त किया। महात्मा गांधी, भगत सिंह, सुभाषचंद्र बोस आदि पर अनेक किस्से और मुक्तक रागनियाँ लिखी गई, जिनमें उनके साहस और बलिदान का हृदयस्पर्शी वर्णन है। इन रचनाओं के माध्यम से कवियों ने न केवल अपने श्रद्धा - सुमन अर्पित किए, बल्कि जनता में राष्ट्रीय एकता का संदेश भी प्रसारित किया। कवि लेखराज चौहान ने आजाद हिन्द फ़ौज के साहसिक प्रयास को इन शब्दों में दर्शाया है -

"रास बिहारी सुभाष बोस नै अपनी फौज बनाई थी
विदेशों में घूम घूम अंग्रेजों की करी बुराई थी
सहायता ले जापान देश की उन्है करी चढ़ाई थी
बमबारी जापान पै होगी फिर पीछे फौज हटाई थी
करणी में छोब्बी ना कमी कोई उसपै क्यों अवसाद करो
देश की खातिर ज्यान गंवादी आज उन वीरों को याद करें।"

लेख राज चौहान, गागर में सागर, राइटर्सग्राम पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2021, पृष्ठ संख्या - 34

महाशय धर्मपाल भालोठिया ने औपनिवेशिक काल में भारतीयों की स्थिति का वर्णन करते हुए, एक रागनी के माध्यम से शहीदों को प्रणाम किया है -

"जिस दिन भारत माता थी, अंग्रेजों के बंधन म्हं।
हमारे मरने जीने का, कानून बने था लंदन म्हं।
दुनिया हमको कहती थी, कुली, काले और गुलाम ।
देश के अमर शहीदो है तुमको प्रणाम

डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, धर्मपाल भालोठिया ग्रंथावली, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण - 2022, पृष्ठ संख्या - 319

रागनी साहित्य में अंग्रेज़ी शासन की क्रूरता और अत्याचारों का भी सजीव चित्रण मिलता है। जलियाँवाला बाग हत्याकांड, रोलेट एक्ट और अन्य ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित रागनियाँ इस तथ्य को उजागर करती हैं कि भारत की स्वतंत्रता अनायास प्राप्त नहीं हुई, बल्कि असंख्य देशभक्तों के त्याग और बलिदान के परिणामस्वरूप अर्जित हुई है। कवि राजबीर वर्मा की रचना में जनरल डायर द्वारा जलियाँवाला बाग में किए गए अमानवीय नरसंहार का मार्मिक वर्णन देखिये -

"बीस मिनट तक गोली चाली, सन्नाटा - सा छा ग्या था
जान बचा कै भागण लागे, आगै कुआँ आग्या था
बाहर जाण का रस्ता कौनी, बन्द गेट कर राख्या था
कुछ तो मरगे गोली खा कै, कुछ नै कुआँ खा ग्या था
उधम सिंह नै जुल्म नजारा, आँख्या बीच समाया र
जलियाँ वाले बाग की घटना, सुण मेरा जी घबराया र।"

राजबीर वर्मा, रंगीला हरियाणा, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2021, पृष्ठ संख्या – 48

ये रागनियाँ वीरता और बलिदान का सार प्रस्तुत करते हुए आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करती हैं। आज भी हरियाणवी जनमानस में इन्हें पूर्ण श्रद्धा और उत्साह से गाया – सुना जाता है। इन रचनाओं के माध्यम से श्रोता स्वतंत्रता सेनानियों के संघर्ष और बलिदान को स्मरण करते हुए आज़ादी के वास्तविक मूल्य और उसके संरक्षण की भावना को आत्मसात करते हैं।

भारत – चीन और भारत – पाक युद्ध

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हुए भारत – चीन (1962) और भारत – पाक (1965, 1971, 1999) युद्धों ने भारतीय समाज और जनमानस पर गहरा प्रभाव छोड़ा। जब संपूर्ण राष्ट्र शौर्य, त्याग और राष्ट्रीय एकता की भावना से ओतप्रोत था, तब हरियाणवी रागनी को इन घटनाओं से कैसे अछूता रखा जा सकता था। इन युद्धों में कई हरियाणवी जवानों ने शौर्य का परिचय दिया और मातृभूमि के लिए प्राणों का बलिदान किया। रागनी लेखकों ने प्रदेश के इन वीर जवानों पर अनेक मुक्तक रागनी व किस्सों का निर्माण कर इतिहास में इनका नाम अमर कर दिया। उदाहरण के लिए कवि दयाचंद मायना की रचना 'ब्रिगेडियर होशियार सिंह' की रागनी दृष्टव्य है –

"अंधा – धुंध गोळी बरसै काबू म्हं ना आया
देख वीरता हुशियार सिंह की दुश्मन भी घबराया
पाछै फिरकै देखण लाग्या ना कोए साथ म्हं पाया
भारत मां के लाल पै फेर चीन नै जाळ बगाया
डिस्चार्ज से पहले उनकी होगी आखरी छुट्टी।"

डॉ राजेन्द्र बड़गूजर, महाशय दयाचंद मायना ग्रन्थावली, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला, प्रथम संस्करण – 2014, पृष्ठ संख्या – 184

हरियाणवी रागनियों में पाकिस्तान की छलपूर्ण व्यवहार की स्पष्ट निंदा की गई है। भारत की ओर से जब – जब मित्रता और शांति का हाथ बढ़ाया गया, तब – तब पाकिस्तान ने विश्वासघात और आक्रामकता का मार्ग अपनाया। इन परिस्थितियों में भारतीय सैनिकों द्वारा दिए गए साहसिक और सटीक प्रत्युत्तर का गौरवपूर्ण वर्णन रागनी साहित्य में बार – बार उभरता है। 1965 के युद्ध में पाकिस्तान के छल और भारत की जवाबी कार्यवाही के दृश्य को प्रस्तुत करती सांगी चन्द्रलाल बादी की रागनी इस प्रकार है –

"भारत था चुपचाप पाक नै जाण कै कुबध कर दी।
मुंह तोड़ जवाबों म्हं हिन्द नै भी बंबारी गदागद कर दी।।"

राजेन्द्र बड़गूजर, सांग – सम्राट चन्द्रलाल बादी ग्रन्थावली, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, प्रथम संस्करण – 2017, पृष्ठ संख्या – 920

भारत के मैत्रीपूर्ण व्यवहार और बदले में पाकिस्तान की कपटपूर्ण नीतियों, विशेषत: कारगिल युद्ध जैसी घटनाओं ने कवियों के मन को गहराई से प्रभावित किया। इन भावनाओं को पंडित जगन्नाथ ने अपनी रागनी में इन शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

"न्यूँ सोचूँ जाणू ईब चला जा लड़ण कारगिल म्हैं।।टेक ।।
भारत आले इस मौके पै, जै ध्यान नहीं देते।
थोड़े दिन म्हैं दुश्मन अपणा, कब्ज़ा कर लेते ।
हम चाहवैं सैं प्रेम बढ़ाणा, हम चेताये जब चेते ।
दुश्मन पहलाये चेतन था, हम जागे बहोत पछेंते ।
ल्हुकमा अड्डे बणा लिये थे, म्हारी टाइगिर हिल म्हैं ।"

रामफल चहल, पंडित जगननाथ समचाना हरियाणवी ग्रन्थावली, अक्षरधाम प्रकाशन, कैथल, प्रथम संस्करण – 2019, पृष्ठ संख्या – 85

रागनी और सैनिक जीवन का यथार्थ

हरियाणवी रागनी साहित्य में केवल युद्धों का घटनात्मक वर्णन या वीरता का गुणगान ही नहीं मिलता, बल्कि यह सैनिक जीवन के व्यक्तिगत अनुभवों और मानवीय भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। इन रचनाओं में एक सैनिक के संघर्ष, त्याग, परिवार से दूर रहने की पीड़ा, पति – पत्नी वियोग आदि भावनात्मक

और मनोवैज्ञानिक पहलुओं का सूक्ष्म चित्रण किया गया है।

उदाहरणस्वरूप, फौजी मेहर सिंह के काव्य में हमें ऐसे कवि की संवेदना दिखाई देती है, जिसने स्वयं सैनिक जीवन जिया और अपने तथा अपने साथियों के अनुभवों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया। उनकी रागनियाँ केवल युद्धभूमि के पराक्रम का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि सैनिक के अंतर्मन की व्यथा, अकेलेपन और मानवीय संवेदनाओं को भी उजागर करती हैं–

"छुट्टी के दिन पूरे होग्ये न्यू सोचण लाग्या मन म्हं
बांध बिस्तरा चाल पडग्या कुछ बाकी रही ना तन म्हं।। टेक ।।
छाती कै ला कै माता रोई जिसनै पाल्या पोष्या जाम्यां था
बुआ बाहण पुचकारण लागी भाई भी रोया राम्भा था
दरिया केसी झाल उठती मनै कालजा थांब्या था
छोटे भाई नै घी की पीपी म्हं गूंद खाण का बांध्या था
न्यूं बोले दिये छोड़ नौकरी के दब कै मरैगा धन म्ह .."

रामफल सिंह चहल, रघुबीर सिंह मथाना, स्वतंत्रता सेनानी एवं कवि फ़ौजी मेहर सिंह, लक्ष्मण साहित्य प्रकाशन, रोहतक, प्रथम संस्करण–1996, पृष्ठ संख्या– 197

काव्यरूप रागनी में एक फौजी की नवविवाहित पत्नी की मनोदशा को अभिव्यक्त करने वाली रचनाएँ अत्यंत मार्मिक हैं। ऐसी रागनियों में स्त्री का भावनात्मक संसार, उसके हृदय में उठता विरह, भय और अनुराग का संगम देखने को मिलता है। इस परिप्रेक्ष्य में एक रागनी प्रस्तुत है जिसके रचयिता के संबंध में विद्वानों में पूर्ण मतैक्य नहीं है, किंतु अपनी मार्मिकता और भावनात्मक गहराई के कारण यह रचना अत्यंत लोकप्रिय है–

"करकै घायल तड़फती छोड़ी तूं ज्यान क्यूं ना काढ़ लेग्या
हो परदेशी गैल मेरे तूं बांध क्यूं ना हाड लेग्या।।"

सीमाएँ

हरियाणवी रागनी साहित्य में युद्ध–केन्द्रित रचनाओं की संख्या पर्याप्त है, जिनमें युद्ध के विविध आयामों को अभिव्यक्ति मिली है। इन रचनाओं में युद्धभूमि के सजीव दृश्य, सैनिकों की वीरता, अंग्रेज़ों की बर्बरता, स्वतंत्रता सेनानियों को श्रद्धांजलि, आधुनिक युद्धों का वर्णन, युवाओं को सेना में भर्ती होने की प्रेरणा तथा सैनिक जीवन की व्यक्तिगत पीड़ा और पारिवारिक बिछोह तक का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। फिर भी युद्ध के बाद उत्पन्न मानवीय त्रासदी और मानसिक आघात को रागनी में अपेक्षाकृत कम स्थान मिला है। इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि हरियाणवी रागनी युद्ध समर्थक है, वस्तुत: कोई भी संवेदनशील साहित्य युद्ध का समर्थन नहीं कर सकता। यह अभाव संभवत: रागनी की विधागत सीमाओं से उत्पन्न हुआ है।

रागनी मुख्यत: एक काव्यरूप है, जिसका उद्देश्य तात्कालिक भावों की अभिव्यक्ति और श्रोताओं को भावनात्मक रूप से जोड़ना होता है। इसके विपरीत, कथा, उपन्यास या नाटक जैसी विधाएँ विस्तार और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं। इसलिए रागनी में युद्ध के तत्काल प्रभाव और भावनात्मक उफान को अधिक स्थान मिला, जबकि युद्धोत्तर मानवीय पीड़ा और सामाजिक पुनर्निर्माण जैसे गहरे विषय अपेक्षाकृत सीमित रूप में अभिव्यक्त हुए।

निष्कर्ष

युद्ध और साहित्य का संबंध आदिकाल से चला आ रहा है। युद्ध साहित्य को विषय और सामग्री देता है, जबकि साहित्य युद्ध के अनुभवों को अमर और जीवंत बनाता है। हरियाणवी रागनी साहित्य में युद्ध केवल एक ऐतिहासिक या घटनात्मक विषय नहीं, बल्कि लोकजीवन की भावनाओं, संवेदनाओं और अनुभवों का दर्पण है। प्राचीन काल के पौराणिक युद्धों से लेकर आधुनिककालीन युद्धों तक कवियों ने अपने रागनी काव्य के माध्यम से वीरता, देशभक्ति, त्याग और मानवीय करुणा का समन्वित चित्र प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं में जहाँ सैनिकों के शौर्य और बलिदान की गाथाएँ हैं, वहीं परिवार के बिछोह, नारी की प्रतीक्षा और युद्ध की त्रासदी जैसे भावनात्मक पहलुओं को भी अभिव्यक्ति मिली है।

❋❋

विरहिणी

* आद्या प्रसाद द्विवेदी

जन्म :
1941 ई. (गोरखपुर के चन्दौली ग्राम में)
शिक्षा :
पीएच.डी., साहित्य-रत्न।
सृजन :
आलोचना पर दो पुस्तकें, दो ललित निबंध संग्रह, भोजपुरी कहानी संग्रह, कुछ अन्य कृतियाँ, आठ पुस्तकों का संपादन। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान :
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से रामनरेश त्रिपाठी स्मृति पुरस्कार एवं साहित्य भूषण सम्मान सहित अनेक सम्मान।
संपर्क :
मालती कुंज, सिद्धार्थ इन्क्लेव विस्तार, एच. आई. जी. द्वितीय, 32, तारामण्डल, गोरखपुर-273017
मो. 9415632538, 9450639170

भारतवर्ष के वातावरण में प्रकृति नित्यश: परिवर्तनशील रहती है। ग्रीष्म ऋतु में कभी सविता देव की प्रखर किरणें अंगारों की वर्षा करती हुई धरती को पूरी तरह से दग्ध कर देती है। वनस्पतियाँ झुलस उठती हैं। नदी-नाले, ताल-पोखरों के जल तलातल को पहुँच जाते हैं। लगता है जैसे समूची धरित्री जल के बिना सुख कर आहें भर रही है। फिर प्रकृति में परिवर्तन का चक्र चलता है। ग्रीष्म ऋतु भागी, प्रकृति में पावस का आगमन हुआ। आकाश में उमड़-घुमड़ मचाने वाले मेघों का आगमन हुआ, क्योंकि संतापहारी मेघों से अपनी प्रिया धरित्री की व्यथा-वेदना देखी न गई। मेघों की अविरल जलधारा से धरती की सारी देह भीग गई। अनिर्वचनीय आनंद से उसका रोम-रोम हर्षित हो उठा। उसके वक्ष पर उल्लास के शत-शत शिशु मचल उठे। वननस्पतियों में नव जीवन का संचार हुआ। जलाशयों के रिक्त कोष पुन: वारिवृंदों से परिपूरित हो उठे। सूखी सरिताएँ पुन: अपनी युवा स्थिति में आ गई और इठलाती, मचलती अपने प्रिय सागर से मिलन के लिए अभिसारिका नायिका की मानिंद चल पड़ी हैं।

पर्वत शिखरों के समान दीखने वाले काले-कजरारे मेघ मतवाले हाथी की तरह गर्जना कर रहे हैं। कौंधती हुई बिजलियाँ उनकी पताकाएँ हैं और उड़ती हुई बक पंक्तियाँ उनके कंठ में झूलती हुई पटाकाएँ प्रतीत हो रही हैं। वाल्मीकि जी लिखते हैं :

विद्युत्पताका सबलाकमाला: शैलेन्द्र-कूटाकृति सन्निकाशा:।
गर्जन्ति मेघा: समुदीर्णनादा: मत्ता गजेंद्रा इव संयुगस्था: ।।

(वाल्मीकीय रामायण)

वर्षा ऋतु में परत-दर-परत के समान मेघमालाओं से आकाश भर जाता है, वन-प्रान्तरों में नाचने वाले मयूरवृन्द हर मेघ-नि:स्वन के ताल पर छमाछम नाचने लगते हैं और धरती केतकी पुष्पों से महमहा उठती है। वर्षा काल का प्रिय माह सावन है, जिसे संस्कृत भाषा में नभस भी कहते हैं। इसीलिए इस माह में आकाश धरती पर उतर आता है। सावन के महीने में जब एक ही साथ नर्तमान मयूर और परितृप्त चातक की पुकार का, उद्भिन्न-केसर, कदम्ब और उद्घाटित - पटला मालती की भीनी-भीनी गंध का और सबके ऊपर रिमझिम-रिमझिम बरसने वाले बादलों की झड़ी का आक्रमण होगा, तो क्या कोई विरहिणी धैर्य रख सकेगी? केवल विधाता ही उसके प्राणों की रक्षा कर सकेंगे। आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादलों को देखकर संयोगीजन के हृदय भी मिलनोत्कंठा से व्यग्र

हो उठते हैं तो फिर उन लोगों की क्या अवस्था होगी जो अपनो प्रिय से दूर बसे हों –

मेघालोके भवति सुखिनोऽ प्यन्यथावृत्तिचेतः
कंठाष्लेश प्रणयिनिजने किं पुनर्दूरसंस्थिते।
(मेघदूत)

हरियाली सावन माह का शृंगार है। ग्रीष्म की ऊष्मा से दहकती, झुलसती प्रकृति वर्षा को पा निहाल हो उठती है। सावन भादों में प्रकृति अपने हरितांबरा रूप को देखकर अपने सौभाग्य पर इठला उठती है। किलोल करते विहगवृन्द जलभरे मेघों को देखकर स्वागत गीत गाते हैं। प्रकृति का प्रभाव प्राणिमात्र पर पड़ना स्वाभाविक है। वह उन्मत्त हो उठता है। कज्जल के पहाड़ के समान काले–कजरारे सावन के बादल विरहिणी को लिये घातक सिद्ध हो उठते हैं। वह कब तक अपने को सीमा में रखे। ये बदल कहीं उसे लोकमर्यादा से स्खलित न कर दें। एक ऐसी ही विरह विदग्धा का चित्र इस छन्द में देखिए –

जल भरें भूमै भानो भूमै परसत आय,
इसहें दिसान भूमै दामिनि नए–नए
धूरिधार धूम के से,
धूम से धुआरे कारे
धूरियान धरि धावें,
छवि सों छए छए
श्रीपति सुकवि कहें
प्यार घेरि घेरि घहराहिं
तकत अतन तन ताब तें तए तए
लाल बिनु कैसे लाज चादर रहेगी आज
कादर करत मोहि बादर नए–नए।

स्मृति जीवन का पुरस्कार है। विरहिणी स्मृतियों में ही पिय की छवि निहार लेती है, किंतु सावन में प्रकृति के उद्दीपक उपकरण उसके पति के संतृती के तार को टूक–टूक कर देते हैं। विरहिन के सामने केवल अतीत में विताए क्षण ही उपहास बनकर उसके मन को व्यथित किए रहते हैं। वर्षा ऋतु के प्रथम मास आषाढ़ वह किसी प्रकार काट ली है, किंतु सावन की रति उसके लिये बामन का डग बनी हुई जल्दी बीतने का नाम ही नहीं ले रही है–

दुरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो
आई रितु पावास की न पाई प्रेम पतियां
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी है
दरकी सुहागिनि की छाँह भरी छतिया
आई सुधि वर की हिये में आनि खरकी
तू मेरी प्रानप्यारी, यह प्रीतम की बतिया
बोति औधि आवन की,
लाल मनभावन की
डग भई बावन की सावन की रतिया

लोकजीवन में सावन माह की झूले बड़े ही रम्य वातावरण का सृजन करते हैं। हिंडोलो पर झूलती हुई युवा स्त्रियाँ अपने अन्तस में छिपी भावनाओं को अपने सुमधुर कंठों से लोकगीतों के माध्यम से उड़ेल देती हैं। ऐसा लगता है मानो उनके जीवन में क्लेश का कोई नामोनिशान नहीं है, किंतु अभागिन विरहिणी के लिये ये हिंडोले और उन पर गाए जाने वाले कजरी के बोल उसे काटने को दौड़ते हैं। बरसात का मनभावन मौसम, काली कजरारी रातें, रिमझिम फुहारें, मंडराते–गरजते मेघ, दमकती बिजली, गमकते फूल, सभी उद्दीपनगत वस्तुएं उसके मन में टीस उत्पन्न करती हैं और उसका विरही मन कह उठता है :

गरजे बरसे रे बदरिया
पिया बिन मोहे ना सुहाय
आये बदरा स्याम रंग,
रहे गगन बिच छाय,
रैन अंधेरी घिर रही,
जिया नाजुक डर जाए
चहक– चहक रहे चेतक,
महक महक रहे फूल
रैन अंधेरी ऐसी गई बार मैं भूल
एक तो मैं बिरहा की
मारी दूजे कैसे रहा जाय
पपीहा कोकिल कोकिला
नीलकंठ औ मोर
नाच नाच कुहुकत रहे
देखि देखि घन ओर
ऐसे सावन में साँवरिया
मोहे कछु ना सोहाय।

सुहाने मौसम में रिमझिम पानी बरस रहा है और अपने नायक को याद करती हुई नायिका कहती है कि मेरे साजन के बिना यह महल सूना लग रहा है। अंधेरी रात बड़ी ही डरावनी है और ऊपर से सावनी पवन बह बहकर मन को उन्मथित कर दे रहा है। पोखर –ताल जल से लबालब भरे हैं, इन सारे दृश्यों को देखकर पिय की याद ताजा हो उठती है, कलेजे की धड़कन बढ़ जा रही है–

सखि हे रिमझिम बरसे सवानवाँ,
भवनवाँ सूना, लागे ना,
रात अन्हरिया भयावन लागे,
सिसके परनवाँ ना।
ताल तलैया सब उपटायल धड़के करेजवा ना
सखि हे रिमझिम बरसे सवनवां ना।

नायिका के मन में आशा और विश्वास है कि सावन आया है और

उसके साजन परदेश से घर जरूर लौटेंगे और हमारा मिलन अवश्य होगा। रिमझिम बूदें बरस रही हैं, मैं झूले पर बैठी हूँ, पर मेरा तन-मन साजन-साजन की याद में बावला हुआ जा रहा है। इस पर भी ठंडी-ठंडी पुरवैया बयार से मेरे तन-मन के पोर-पोर में ऐंठन हो रही है, अंगड़ाइयाँ आ रही हैं। इतना ही नहीं, जब मैं फुलवारी में खिले हुए फूलों को देखती हूँ तो मेरा आँचल उड़ने लगता है, साजन से मिलन हेतु मन में प्रीति के भाव उठने लगते हैं, शुभ सगुन होने लगते हैं। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि अबकी सावन के मैं अपने प्रियतम से अवश्य मिल पाऊँगी।

आयल सावन के महीनवाँ, होइहैं सैयाँ से मिलनवा ना,
रिमझिम बरसे कारी बदरिया झलुआ झूलत भइलीं बावरिया
ठंडी-ठंडी बहे पुरवइया रहि रहि आवे हो अंगड़इया
फुलवारी में फुलवा फुलायल, अंचरा हमारा उड़ि-उड़ि आयल।

ऐसे ही एक और विरहिणी का चित्र देखिए, जो सावन माह के साथ प्रिय के अभाव में अपने जीवन की आशा ही छोड़ बैठी है, उसे अब की कोई इच्छा नहीं है। विरहिणी नायिका कहती है कि सावन माह में जब हर तरफ सुहाना मौसम है, चहुँओर हरियाली पसरी हुई है, भाँति-भांति के फूल खिले हैं, पुष्पित बेला और चमेली के फूलों को देखकर तथा उनसे निःसृत खुशबुओं से मेरा मन बावरा हुआ जा रहा है। इस विरह वेदना में अगर मेरे पति नहीं आए तो मेरा जीवन किस काम का ? मैं अब जीवित नहीं रह सकती हूँ। नायिका की आँखों में निराशा झलक रही है :

सावन हे सखी परम सुहावन
फूलल बेइल चमेली हो
आजु नाहीं मोर प्रियतम आयल
अब जीयल कवने काम हो?

पावसऋतु का अंतिम पड़ाव भाद्र मास होता है। इस मास में वर्षा के अतिरेक के साथ अंधकार का आधिक्य वातावरण को बड़ा ही अशान्त बना देता है। प्रकृति की सभी दिशाएँ घने बादलों के कारण बडी भयावनी लगती हैं। बादलों का गरजना, बिजलियों की की चमक और तड़तड़ाहट के कारण भयभीत मेरा तन थर-थर काँप जा रहा है। मुझसे अब विरह-वेदना सही नहीं जा रही है, प्रियतम की याद से हाल बेहाल हुआ जा रहा है :

भादों हे सखी रयनि भयावनि
दूसर अन्हरिया की राति रे
बदरा जे गरजै रामा बिजुरी जे चमकै
थर-थर काँपे शरीर है।

ऐसे ही एक अन्य कजरी गीत में विरहिणी कह रही है कि प्रिय की राह देखते-देखते जेठ-आषाढ़ बीत गया। फिर देख रही हूँ कि मनभावन सावन माह भी मेरे लिए बेईमान बना हुआ है, क्योंकि मुझे अपने प्रिय की याद सता रही है और यह सावन मेरे मन को व्याकुल किए जा रहा है। एक-एक पल विरह-वेदना में बीत रहा है।

राह तकत वितले जेठ-अषाढ़
घटा घिरि आयल रे हरी।
हरी-हरी बीते नाहीं सवनवाँ,
बड़ा बेईमनवा रे हरी।

भाद्र मास की अंधेरी काली रात जायसीकृत 'पद्मावत' काव्य की राजरानी नागमती से अकेले काटे नहीं कटती। सूनी शैया नागिन की तरह उसे बार-बार डँसती है। उधर बादल पवनवेग से झकोरे दे-देकर बरस रहे हैं और इधर बेचारी विरहिणी नागमती की आँख से अविरल अश्रुधार प्रवाहित हो रही है, जैसे घर के छप्पर की ओरियानी चू रही हो। बरसते हुए मेघों ने धरती और आकाश को एकाकार कर दिया है। यह यौवन के अगाध जल में डूब रही है। केवल प्रियतम ही उसे सहारा देकर डूबने से बचा सकता है-

भा भादों दूभर भति भारी। कैसे भरों रैनि अंधियारी।।
मंदिर सून पिउ अन्ते बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डँसा।।
मेघा बरस झकोरि -झकोरी। मोर दोउ नयन चुए जस ओरी।।
जल-थल -थल भरे अपूर सब, धरनि गगन मिलि एक।
धनि-जोवन अवगाह में बूड़त है पिउ टेक ।।

(पद्मावत)

वियोगिनी नागमती को समस्त सुख-सुविधाओं से सम्पन्न राजमहल भी प्रियतम के बिना जहाँ काटने को दौड़ रहा है, वहीं एक संयोगिनी गरीब युवा स्त्री टूटी हुई खाट पर वर्षाकाल में टपकती हुई अपनी पलानी में प्रियतम के प्रगाढ़ आलिंगन में रात की बेला सुख लूट रही है :

टूटी खाट घर टपकत टटियो टूटि।
प्रिय के बाँह उससवा सुख कै लूटि

- (रहीम - बरवै नायिका भेद)

काशी का अस्सी

* अरविंद तिवारी

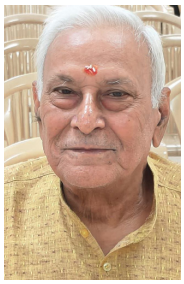

जन्म :
01 फरवरी, 1953

सृजन :
तेरह व्यंग्य संग्रह, पांच उपन्यास, जिनमें चार व्यंग्य उपन्यास, तीन काव्य संग्रह प्रकाशित।

सम्मान :
एक दर्जन राष्ट्रीय स्तर के सम्मान और पुरस्कार, जिनमें उप्र हिंदी संस्थान का श्रीनारायण चतुर्वेदी साहित्य सम्मान, व्यंग्य यात्रा रवींद्र नाथ त्यागी शिखर सम्मान, राजस्थान साहित्य अकादमी का सम्मान आदि प्रमुख हैं।

संप्रति :
डाइट के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

संपर्क :
मेहरा कॉलोनी, शिकोहाबाद
283135 (उप्र)
मोबाइल 9457539172

बनारस के अस्सी में ठहरा हूं। सुविधा यह कि होटल से अस्सी घाट दो सौ मीटर है। 1976 के बाद अप्रैल 2023 में बनारस आया हूं।1976 में बी. एड. प्रशिक्षण के दौरान कॉलेज टूर में आया था।किसी आश्रमनुमा गेस्ट हाउस में हम रुके थे। पास में मुमुक्ष भवन था, जिसमें उस समय के पांच हजार रुपए देकर कोई भी उम्र भर मुफ्त खाना, रहना कर सकता था। पूजा पाठ और गंगा स्नान करते हुए पूरी ज़िन्दगी काट सकता था। उस टूर की यादों में करपात्री जी भी हैं, इमरजेंसी भी है।तब हम सबके लिए करपात्री जी प्रवचन देने हमारे गेस्ट हाउस में आए थे। प्रवचन के बाद उन्होंने नारे लगवाए थे।पर हमारे शिक्षकों ने हमें पहले ही कह दिया था, गौ हत्या बंद हो वाला नारा नहीं लगाना है। इमरजेंसी का खोफ़ था। वह नारा हमने नहीं लगाया। करपात्री जी खिन्न भी हुए थे। आज मुझे करपात्री जी जैसा कोई संत नहीं दिखाई देता। उनकी वाणी में सम्मोहन था। उनकी जिह्वा पर सरस्वती विद्यमान थीं। उस टूर की एक याद और है। हमारे साथ बी. एड. की ट्रेनिंग कर रहे एक सरदार जी अस्सी घाट पर नहाते समय डूबने लगे तो घाट के पंडों ने उनके केश पकड़कर उन्हें बचाया था। तब हम सब मिर्जापुर और चुनार भी गए थे। इस बार मैं बनारस में ही दो दिन रुका रहा। तीसरे दिन लौटने का रिजर्वेशन था।

लगभग सैंतालीस साल बाद आप किसी शहर में जाएंगे तो कुछ भी पुराना पहचान नहीं पाएंगे। अस्सी घाट पर पहले जैसी पवित्रता नहीं है, जबकि भीड़ बेशुमार है। नाव और मोटरबोट की संस्कृति ने गंगा स्नान के महत्व को समाप्त कर दिया है। बाज़ार हर जगह घुस आया है। बोट पर सवारियों के साथ चाय वाला भी बैठा है। गंगा के उस पार टेंट सिटी बनी है। कृत्रिम रेतीले टीले बनाए गए हैं जहां कैमल सफारी टाइप का पैकेज है। हमने उम्र का अधिकांश भाग राजस्थान में गुज़ारा है और जैसलमेर में कैमल सफारी का लुत्फ़ भी लिया है, इसलिए बनारस की यह ऊंट की सवारी आकर्षित नहीं करती। यहाँ जो ऊँट हैं, वे बेहद मरियल किस्म के हैं। तब1976 में इक्का दुक्का नावें चलती थीं। याद है नाव में बैठकर हम गंगा पार रामनगर में लाल बहादुर शास्त्री जी का पैतृक मकान देखने गए थे। इस बार भी नौका की सवारी की। अस्सी घाट से नाव चली तो मणिकर्णिका घाट पर ही रुकी। कई नावें समानांतर चलती रहीं। ये सभी मोटर बोट थीं। हाथ से खेने वाली नाव का मजा कुछ अलग है। मणिकर्णिका घाट पर चिताएँ

उसी तरह जल रही थीं जैसे तुलसीराम के स्टूडेंट लाइफ में जलती होंगी। मैंने इस मोटर बोट से अस्सी घाट से मणिकर्णिका घाट तक आने-जाने का किराया तय किया था। पचास रुपए रेट था।सभी से पचास रुपए लिए गए। पर सभी मेरे साथ लौटे नहीं। दो चार को छोड़कर सभी यात्री मणिकर्णिका घाट से कॉरिडोर के रास्ते विश्वनाथ मंदिर के दर्शन करने चले गए।उनका एक तरफ का किराया पचास रुपए पड़ा।

हम एक दिन पहले ही तंग गलियों से विश्वनाथ भगवान के दर्शन कर आए थे। ई-रिक्शा बनारस की गलियों के लिए बहुत मुफीद है। दर्शन के लिए जाने से पहले मोबाइल मेरे पेंट की जेब में ही रह गया। लाइन तोड़कर इसे जमा करवाने की जोखिम मैंने नहीं ली।पुलिस वाले ने भी चेकिंग में ज्यादा ध्यान नहीं दिया। मोबाइल ले जाना नियम विरुद्ध था। बीच में ही हमें कोई लौटा सकता था। जब कई चक्कर वाले रास्ते में हम लाइन से चक्कर काट रहे थे, दर्शन के लिए तभी मोबाइल की घंटी बजी। मैंने उसे बजने दिया। भीड़ के शोर में किसी को सुनाई नहीं दे रही थी। यदि मैं इसे निकाल कर साइलेंट मोड पर करने की कोशिश करता तो यह हरकत सीसीटीवी में रिकॉर्ड हो जाती। एक घंटे में दर्शन हो पाए। गर्भ गृह में जाने की इजाज़त नहीं मिलती इसलिए ऊपर रखे विश्वनाथ जी के शिवलिंग के दर्शन करके लौट आए। सुरक्षाकर्मी चलने का निर्देश दे रहे थे।चलते रहो और दर्शन करते रहो। मैंने स्पर्श दर्शन भी कर लिए। लौटते समय मंदिर के सामने प्रसिद्ध लस्सी वाला था, जहां भीड़ लगी हुई थी। मैंने भी लस्सी पी, हालांकि इसमें बहुत वक्त लगा। मंदिर के सामने ये खान पान की दुकानें खूब चलती हैं। मंदिर से पहले जो चौराहा है वहां मल्टी स्टोरी पार्किंग बनाया गया है। कम जगह में यही होना था। पुलिस का पुख्ता इंतजाम था।

सैंतालीस सालों में गंगा में बहुत पानी बह गया है! खूब मैली भी हुई है। तब काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी' नहीं लिखा गया था और न तुलसीराम की आत्मकथा का भाग 'मणिकर्णिका' लिखा गया था।उनकी आत्मकथा का पहला भाग 'मुर्दहिया' बहुत चर्चित हुआ।हिंदी दलित साहित्य में इसे सर्वश्रेष्ठ माना गया। इसमें जो गांव आया है, उसकी तारीफ नामवर सिंह जी ने भी की है। इसकी ग्रामीण चेतना को नामवर जी ने प्रेमचंद से श्रेष्ठ बताया है। प्रसाद का तितली, प्रेमचंद का रंगभूमि उपन्यास ज़रूर काशी की पृष्ठभूमि पर उपलब्ध थे। शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में भी काशी है, पर नई सदी के प्रारंभ में आए काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'काशी का अस्सी' ने काशी को एक बार फिर साहित्य के केंद्र में ला दिया। पांच कहानियों के आधार पर इस उपन्यास का ताना बाना बुना है। मैंने सबसे पहले इसका अंश 'पांडे कौन कुमति तोहे लागी' हंस में पढ़ा था। तब मुझे यह संस्मरण और कहानी का मिला-जुला रूप लगा था। बाद में उपन्यास आया तो पढ़ा। ठेठ बनारसी भाषा का ठाठ इसमें है। गालियों की बिंदास बौछार ही इसका असली आनंद है, जो बनारस वालों की मस्त जिंदगी का आख्यान माना जाता है। नेताओं से लेकर बड़े बड़े तुर्रमखां तक इन गालियों से नहीं बच पाए। इस यात्रा में मैं उपन्यास के तन्नी गुरु को ढूँढ़ता रहा। मणिकर्णिका घाट पर तुलसीराम की गरीबों में बाँटी जा रही खिचड़ी को भी ढूँढ़ता रहा, जिसे लेखक भूखे पेट टुकुर-टुकुर देखा करता था।तुलसीराम की आत्मकथा सर्वश्रेष्ठ यों ही नहीं मानी गई। उस समय बी. एच. यू. की छात्र राजनीति का इसमें बड़ी शिद्दत से चित्रण हुआ है।

काशीनाथ सिंह के 'काशी का अस्सी' उपन्यास आने के बाद एन. डी .टी. वी. की एक टीम बनारस आई थी।विनोद दुआ ने काशीनाथ सिंह को नाव में बैठाकर उनका इंटरव्यू लिया था। उसके प्रसारण को मैंने देखा था। अपने शहर बनारस के बारे में बताते समय काशीनाथ सिंह ने बनारस की गालियों का खूब प्रयोग किया था। यही कारण रहा जब एन. डी. टी. वी. ने इसका प्रसारण किया, तो उसमें सैकड़ों बार वीप की ध्वनि सुनाई दी थी।

अब मणिकर्णिका घाट पर विश्वनाथ मन्दिर कॉरिडोर का गेट दिखाई देता है। अब यदि काशी का अस्सी लिखा जाता तो उसकी कहानी थोड़ी अलग होती। बनारस की गलियों में इस बार भी वही पुरानी मस्ती देखने को मिली। तंदूरी चाय तो हमारे शहर में भी मिलने लगी है। मिट्टी के कुल्हड़

को आँच में खूब गर्म करके उनके ऊपर चाय डाली जाती है। फिर उसे छान कर चाय सर्व की जाती है।यही तंदूरी चाय है। पर बनारस में संकटमोचन मंदिर के पास लंका रोड पर, हांडी चाय पहली बार मैंने पी। मिट्टी की हांडी में चाय बनाई जाती है। यही हांडी चाय है। इसमें अन्य सामग्री के साथ गुलाब के फूलों की पंखुड़ियां भी डाली जाती हैं। इस चाय का अपना अलग स्वाद है। टमाटर की चाट नहीं खाई तो बनारस आना बेकार है। ऐसी टमाटर की चाट अन्य किसी शहर में उपलब्ध नहीं है। एक बात और, बड़े-बड़े रेस्टोरेंट छोड़कर आप अगर तंग गलियों की छोटी-छोटी दुकानों के सामने स्वाद का आनंद लेंगे तो सचमुच आनंद आएगा। मुझे तंग गलियों की चाट वाली दुकानें भी बनारस का आकर्षण लगती हैं। बनारस में तमिलनाडु से बहुत यात्री आते हैं। तमिल काशी संगमम आजकल चर्चा में है। मुझे होटल मिलने में जो कठिनाई हुई, उसके पीछे इन्हीं यात्रियों का हाथ था। जब मैं बनारस पहुंचा तब तमिलनाडु वालों का कोई उत्सव था बनारस में। सब होटल बुक थे। सामान्य से अधिक किराया देकर जैसे-तैसे अस्सी घाट के पास मुझे होटल मिल पाया। जब तमिल संस्कृति बनारस में पनप रही है, तो वहां का खान-पान भी इफरात में उपलब्ध है। डोसा, इडली, उत्तपम आदि बहुत ही जायकेदार मिलते हैं। इनका भी स्ट्रीट फूड खूब जायकेदार होता है।

मुझे रविवार की शाम अपने शहर के लिए प्रस्थान करना है। इंदौर के प्रसिद्द लेखक शरद पगारे जी का संदेश मिला, वह भी बनारस यात्रा पर हैं। पर शनिवार को वह प्रयागराज हवाई अड्डे पर थे। सारनाथ और प्रयागराज की यात्रा के बाद वह लौट गए। उनका कहना था, उन्हें पहले पता होता तो मुलाकात हो जाती। इस यात्रा के कुछ महीने बाद ही वह हमारे बीच नहीं रहेंगे,तब यह पता नहीं था। शनिवार शाम को फेसबुक पर 'लोहे का घर' व्यंग्य कॉलम लिखने वाले देवेन्द्र पांडेय जी का फोन आया, वह मिलना चाहते हैं रविवार को। मैं जानता था वह नौकरी में डेली अपडाउन करते हैं और सारनाथ में रहते हैं। मैंने भी अपडाउन किया है। मैं जानता हूं अपडाउन में रविवार का क्या महत्व होता है, इसलिए उन्हें मना कर दिया। मैंने कहा, मैं रविवार को बनारस से निकल रहा हूं।

❋❋

सर्जकों तथा पाठकों से

- **'समकालीन अभिव्यक्ति' एक साहित्यिक आन्दोलन है। इसमें आपकी सक्रिय भागीदारी निवेदित एवं अपेक्षित है।**
- **पत्रिका में प्रकाशनार्थ रचनाओं का स्वागत है। कथा, व्यंग्य, लेख, गीत, ग़ज़ल, कविता, रिपोर्ताज आदि किसी भी विधा में रचना भेजें।**
- **रचना कागज के एक तरफ पर्याप्त हाशिया छोड़कर सुस्पष्ट अक्षरों में लिखित या टंकित होनी चाहिए।**
- **अस्वीकृत रचनाएं नष्ट कर दी जाती हैं, अतः उनकी एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाओं की सूचना सामान्यतः फोन पर एक माह के अन्दर दे दी जाएगी।**
- **रचना के अन्त में यह प्रमाणपत्र अवश्य दें कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित है।**
- **फोटो/छाया चित्र के पीछे नाम अवश्य लिखें।**
- **रचनाएं ई-मेल से भी स्वीकार की जाती हैं। ई-मेल से रचनाएँ केवल कृतिदेव या युनिकोड/मंगल में भेजें।**
- **समकालीन अभिव्यक्ति में अन्यत्र प्रकाशित रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाती हैं। जब तक रचना पर निर्णय नहीं हो जाता, तब तक उसे प्रकाशनार्थ अन्यत्र न भेजें।**
- **प्रकाशित रचनाओं पर किसी प्रकार के मानदेय की व्यवस्था नहीं है।**
- **पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के सम्बन्ध में सार्थक आलोचना/प्रतिक्रिया का स्वागत है।**

पहले प्यार की पहली चिट्ठी

★ सुभाष चंदर

जन्म : 27 जनवरी, 1961
शिक्षा : *बी.एससी., एम.ए. (हिंदी), डिप्लोमा पत्रकारिता ।*
सृजन : *'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' सहित कुल 40 पुस्तकें। आइए स्वर्ग चलते हैं, कल्लू मामा जिंदाबाद, इन्सानियत का शो, बेबी किलर (व्यंग्य कृतियाँ)। अक्कड़-बक्कड़ (व्यंग्य उपन्यास)।*
व्यंग्य आलोचना : *हिंदी व्यंग्य का इतिहास। धारावाहिकों का लेखन ।*
सम्मान : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय पुरस्कार, डॉ. मेघनाद साहा पुरस्कार, भारत सरकार, हरिशंकर परसाई सम्मान, अट्टहास पुरस्कार, सृजन सम्मान आदि।
संप्रति : *एन.आई.डी.सी. से प्रबंधक (हिंदी) पद से सेवानिवृत्त।*
संपर्क : *जी-186-ए, एच.आई.जी. फ्लैट्स, प्रताप विहार, गाजियाबाद-201009 (उ.प्र.)*
मोबा. 09311660057, 08826525302

बात लगभग चालीस बरस पुरानी है। यानी उस ज़माने की, जब इश्क़ करना बड़े खतरे का काम था। मतलब सावधानी हटी, दुर्घटना घटी वाला हिसाब था। ऊपर से मामला किसी गाँव या छोटे शहर का हो तो वह तकनीकी तौर पर और ज्यादा ख़तरनाक हो जाता था। कारण यह कि मामला खुलने पर बेइज्जती जो होती थी, वह तो अच्छी होती ही थी, पर इस कार्यक्रम के बाद जो मरम्मत होती थी, उसका स्तर भी काफी उच्च कोटि का होता था। यह काम इतने कलात्मक और संगीतमय ढंग से किया जाता था कि पहले तो बंदे का पूरा शरीर पेंटिंग की शक्ल अख्तियार कर लेता था और फिर महीनों तक उठते-बैठते, चलते-फिरते सा रे गा मा पा की धुनें बजाता था। लोग दूर से ही पहचान लेते थे कि इश्क का मरीज, इलाज कराकर आ रहा है। किस्सा कोताह ये कि उस वक्त में इश्क़ की गाड़ी हांकना काफी दुस्साहस का काम था। इस घोर प्रेम विरोधी माहौल में इश्क के खेल में कबड्डी खेलने की हिम्मत वही करते थे, जिनके दिल, जिगर और शरीर टूट-फूट प्रूफ टाइप के होते थे या फिर वे मन्नू बाबू जैसे धुन के पक्के होते थे, जो यह मानकर चलते थे कि हमने अगर इश्क की गली में गुल्ली-डंडा नहीं खेला तो हमारा जीवन बेकार है।

वैसे अगर मन्नू बाबू इश्क़ की पतंग उड़ाने के पीछे इतने ज्यादा सीरियस थे तो इसके पीछे तीन कारण थे। पहला कारण रोमांटिक हिंदी फिल्मों के दर्शन से जुड़ा था। मतलब यह कि उनके छोटे से शहर के इकलौते सिनेमाघर में जब भी कोई रोमांटिक फिल्म रिलीज़ होती थी तो मन्नू पहले दिन, पहले शो से फिल्म देखनी शुरू करते थे और उसे तब तक देखते थे, जब तक कि उसके सारे गाने और इश्किया डायलॉग उन्हें मुंहजबानी याद न हो जाएं। दूसरे कारण में, रूमानी उपन्यास-कहानियों का पाठन आता था। लैला- मजनू, हीर -राँझा, शीरी- फरहाद टाइप की कहानियां तो उन्हें कॉमा, फुल स्टॉप समेत याद थीं। मतलब फिल्मों के दर्शन के बाद भी अगर इश्क़ की ट्रेनिंग में कमी रह जाती तो वे कहानियाँ उसे पूरी कर देती थीं। तीसरे नंबर पर आईना आता था, जो उन्हें साफ-साफ बताता था कि उनके जैसी धांसू पर्सनैलिटी वाले बंदे को कम से कम चार-छह इश्क तो जरूर करने चाहिए। अगर वह ऐसा नहीं करते हैं

तो उनका जीवन व्यर्थ चला जाएगा।

अब बात मन्नू बाबू की पर्सनैलिटी की हो जाए तो मन्नू बाबा का हुलिया था तो जबरदस्त ही। पूरे पांच फुट चार इंच का शानदार-जानदार कद, चालीस किलो से भी पचास ग्राम फालतू वजन। थोड़े-से पिचके गाल, थोड़ी-सी ही धंसी हुई आँखें और उन धँसी आँखों को ढँकता मोटा चश्मा। मतलब यह आशिकी के हिसाब से सारा मामला टान पटान टेंट था, पर दिक्कत यह थी कि वह लड़की नहीं मिल रही थी, जिससे इश्क किया जा सके। ऐसा नहीं कि मन्नू बाबू ने कोशिश नहीं की थी। कुल दस-बारह जगह प्यार मोहब्बत का जुगाड़ बैठाने की कोशिश की थी, पर कुछ चप्पलों और गालियों के प्रसाद के अलावा कुछ ज्यादा प्राप्त नहीं हो पाया था। इंटरमीडिएट तक दिल की क्यारी बंजर ही रही।

कॉलेज में उनके प्रेमिका खोज ने और गति पकड़ी। कुछ जगह लताड़ मिली, कुछ जगह चप्पलों की मार मिली, पर मन्नू बाबू ने हिम्मत जो थी उसे हारने नहीं दिया। उनकी खोज रंग लाई। उनकी नज़र कुमारी विमला रानी पर टिकी। उन पर नज़र टिकने के कई वाजिब कारण थे। पहला तो यही कि विमला रानी भी उनकी ही तरह इश्कियां फिल्मों की शौकीन थीं। मन्नू बाबू ने उन्हें खुद कई बार सहेलियों के साथ सिनेमा हॉल में देखा था। दूसरे ये कि उन्हें भी मन्नू की तरह पढाई-लिखाई में रुचि कम थी। तीसरे ये कि वह टीचर की नज़र बचाकर थोड़ी -थोड़ी देर में आईना देखती थीं और बात-बेबात मुस्कराती रहती थीं। ये सारी बातें इस बात का प्रमाण थीं कि चिड़िया दाना चुगने को तैयार बैठी है... बशर्ते कि कोई दाना तमीज से डाले। और मन्नू तो कमीज तक तमीज से पहनते थे, सो उनमें भला तमीज की क्या कमी थी। सो, उन्होंने कुमारी विमला रानी पर कंसंट्रेट करना शुरू किया। पहले राउन्ड में उन्होंने कुमारी विमला रानी को कनखियों से निहारना शुरू किया। पर विमला रानी ने उनका कोई नोटिस नहीं लिया। हारकर वह दूसरे राउन्ड पर आ गए, अब उन्होंने उन्हें मौका ताड़कर उन्हें घूर-घूर कर देखना शुरू किया, पर इससे भी मामले की दही नहीं जमी। हारकर मन्नू तीसरे राउंड पर उतर आए। अब उन्होंने विमला देवी को उस तरह देखना शुरू कर दिया, जिसे शुद्ध हिन्दी में टकटकी लगाकर देखना कहते हैं। उन्होंने लगभग रोज नियमपूर्वक आधे घंटे तक टकटकी का इनवेस्टमेंट विमला देवी पर किया। पर उनकी इस टकटकी को विमला ने तो नहीं देखा, पर टीचर ने जरूर देख लिया। उन्होंने मन्नू की टकटकी को तोड़ने के लिए पहले उन्हें आवाज दी, फिर चिल्लाने पर फोकस किया, पर मन्नू टकटकी साधने में ही लगे रहे। हारकर टीचर जी उनके पास अपनी तशरीफ़ को लेकर गए और मन्नू के दाहिने गाल पर थप्पड़ नामक शस्त्र का उपयोग किया। थप्पड़ के प्रहार से मन्नू की तपस्या और टकटकी दोनों टूट गयीं। उन्होंने अकबकाकर देखा तो पूरी क्लास उन पर हँस रही थी और इस हँसी में विमला रानी की हँसी की आवाज सबसे ऊँची थी। मन्नू उनकी हँसी पर वारी जाने के मूड में आने ही वाले थे कि टीचरजी मामले की गंभीरता को भाँप गए, सो उन्होंने पहले मन्नू को 'चरित्र बचाने के फायदे' विषय पर एक लेक्चर दिया और उसके बाद उन्हें उनकी टकटकी समेत क्लास रूम से बाहर निकाल दिया।

इस घटना के बाद मन्नू बाबू की किरकिरी तो काफी हुई, पर एक फायदा भी हुआ। फायदा यह कि अब विमला रानी ने उनकी उपेक्षा करना बंद कर दिया। अब वह उनकी देखादेखी पर कभी उन्हें देखकर आँखें तरेर देतीं तो कभी उन्हें घूरकर थप्पड़ दिखा देतीं। एक दिन तो नजदीक से निकलने पर उन्होंने उन्हें धमकी भी दे डाली, धीमे स्वर में बोलीं, "सुधर जाओ मन्नू, वरना कान के नीचे एक देंगे, सारी आशिकी निकल जाएगी।" अपनी सोच में तो उन्होंने बड़ी जबरदस्त धमकी दी थी। उसके बाद तो मन्नू को डर जाना चाहिए था, फिर 'बहन जी माफ कर दो, गलती हो गई' टाइप के डायलॉग बोलते हुए हुए अगले दिन से क्लास में ही नहीं आना चाहिए था। पर ऐसा कतई नहीं हुआ। मन्नू ने उनकी धमकी को अपने लिए बढ़िया शगुन माना। उन्हें लगा कि विमला रानी ने कम-से-कम अपनी तरफ से बात तो की, चाहे गुस्से से ही की। वैसे भी जो आज गुस्से से बात कर रही है, वह कभी -ना-कभी प्यार से बात जरूर करेगी। सो उन्होंने अपने निहारने, घूरने और टकटकी लगाने वाले

कार्यक्रम बदस्तूर जारी रखे।

इसी तरह मन्नू बाबू के प्यार की रेल धीरे-धीरे सरकती रही। कुछ दिन ऐसे ही चला। अब विमला रानी के समझ में आ गया था कि मन्नू बाबू काफी ढीठ किस्म के आशिक हैं, आसानी से पीछा छोड़ने वालों में से तो कतई ना हैं। ऐसा ज्ञान प्राप्त होते ही उन्होंने मन्नू की हरकतों पर नाराज होना छोड़ दिया। बल्कि कई बार तो वह उनकी इन हरकतों पर मुस्कुरा भी देतीं। मन्नू बाबू ने ऐसी सारी मुस्कानें गिननी शुरू कर दीं। मुस्कानों की गिनती ने जिस दिन सात का आंकड़ा पार कर लिया। मन्नू बाबू उछल पड़े। सीधा-सा गणित था, जो कन्या किसी बंदे को देखकर पूरे सात बार मुस्करा दी हो, इसका पक्का मतलब है कि वह भी आशिकी के मैदान में ईलू-ईलू खेलने को तैयार है। यह जंग तो फतह हो ली थी, पर अभी एक और परेशानी बाकी थी। वो यह कि इस सिलसिले को आगे कैसे बढ़ाया जाए, ताकि मिलने-मिलाने और आगे जाकर शादी-ब्याह का जुगाड़ जम सके।

इस सिलसिले में मन्नू ने अपने यार गुन्नू से सलाह मशविरा किया। गुन्नू इस फील्ड के पुराने महारथी थे। सालों से आशिकी की गाड़ी हांक रहे थे, पर गाड़ी उनकी भी मंजिल पर नहीं पहुंची थी। पर इससे क्या, अनुभव का भी तो कुछ मतलब होता है। सो मन्नू ने उनके अनुभव को पूरा सम्मान देते हुए उन्हें सारी केस हिस्ट्री समझाई। गुन्नू अच्छे डॉक्टर की तरह पूरा मामला समझ गए। बोले, "बेट्टे गुलफाम, हम समझ गए, तुम्हारी कृपा कहाँ अटकी पड़ी है। हमारी मानो तो एक फंडू-सा लव लेटर यानी प्रेमपत्र लिख दो। इससे तुम्हारे इश्क की गाड़ी जो माल गाड़ी की तरह हिचकोले ले रही है,एक्सप्रेस ट्रेन की तरह तेज भागने लगेगी" लव लेटर के नाम पर मन्नू घबरा गए। उन्होंने खूब आँय-बाँय-शाँय की। प्रेमपत्र पकड़े जाने पर आने वाले खतरे गिनाए। पर गुन्नू अड़े रहे। कहना ना होगा कि मन्नू ने अगर-मगर के जितने कबूतर उड़ाये, गुन्नू उन सबको अपनी जुबान के जाल में फाँसकर जेब में डालते गए। मन्नू अब निरुत्तर हो लिए। अब दोनों यार प्रेमपत्र लिखने के प्रोजेक्ट पर काम करने को तैयार हो गए। तय हुआ कि लगभग दस-बारह इश्किया शायरी की किताबें जुगाड़ी जाएँ, कुछेक फिल्मी गानों की किताब रखी जाएँ, जितने फिल्मी डायलॉग याद हैं, उन सबको कहीं लिख लिया जाए, ताकि पहले प्यार की पहली चिट्ठी लिखने में कोई कमी ना रह जाए।

सारी तैयारी पूरी हो गई। शायरी, गाने की किताबों के कच्चे माल आदि का जुगाड़ भी हो गया। दोनों खत लिखने बैठ गए। तभी एकाएक गुन्नू को कुछ याद आया। वह उछल पड़े, मन्नू से बोले, "यार मन्नू, अगर हम चिट्ठी खून से लिखें तो कैसा रहे ? एक फिल्म में हीरोइन जब ज्यादा भाव खा रही थी तो हीरो ने उसे अपने खून से चिट्ठी लिखी थी, हीरोइन फुल फ्लैट हो गई थी। ये टोटका कतई खाली ना जाएगा। मेरी मानो तो चिट्ठी तुम खून से ही लिखो।"

पर मन्नू खून का नाम सुनकर ही घबरा गए, बोले, "खून से, पर किसके खून से ?"

"तुम्हारे खून से, और किसके?"

"क्यों, मैं क्यों अपना खून दूँगा? ना-ना। मुझे तो खून देखते ही चक्कर आ जाते हैं"

उन्होंने खूब बहाने लगाए पर गुन्नू को तो उन्हें हर हाल में इश्क की घोड़ी की सवारी करानी थी, वह भला कैसे मानते ? वह ना माने, मन्नू को मजबूरी में हाँ करनी पड़ी। पर जैसे ही मन्नू ने अपने अंगुली में आलपिन चुभोकर खून निकाला, उस बूंद भर खून को देखकर ही वह चीख मारकर बेहोशी को प्राप्त हो गए। जब तक वह बेहोश रहे, तब तक गुन्नू ने मन्नू के खून का विकल्प सोच लिया। उन्होंने तय किया कि वह ममदू कसाई की दुकान से मुर्गे का लहू लाकर उससे प्रेमपत्र लिखेंगे। वैसे भी आशिकी में आदमी मुर्गा ही तो बन जाता है। उसमें और मुर्गे में फरक ही कहाँ रह जाता है। और अच्छी बात यह है की अभी तक कबूतरों को ही प्रेम यज्ञ में आहुति डालने का पुण्य मिलता था, अब मुर्गो को भी मिल जाएगा । इसके बाद वह पानी के छींटे मारकर किसी तरह उन्हें होश में लाए। मन्नू को अपनी मुर्गे वाली योजना बताई। मन्नू तैयार हो गए। उसके बाद गुन्नू ममदू की दुकान से मुर्गे के लहू का जुगाड़ कर लाए। फिर दोनों ने चिट्ठी लिखनी शुरू कर दी।

इस पूरे प्रोजेक्ट में तीन दिन और

तीन रातों के लगभग 32 घंटे लगे, सात पेन खराब हुए। लगभग 900 कागजों और तीन मुर्गो को बलिदान देना पड़ा, उनके लहू की पाँच बोतलें खर्च हुई। इतनी मेहनत और इतने सारे इनवेस्टमेंट के बाद जो बेशकीमती प्रेमपत्र तैयार हुआ, वह पूरे साढ़े तीन पेज का था। प्रेमपत्र वाकई नायाब था, क्योंकि उसमें दर्जन भर शेरों और गानों की पहली दो लाइनों की शानदार कढ़ाई की गई थी, उसके बाद फिल्मी डायलॉगों के सलमा -सितारें टांके गए थे।

प्रेमपत्र का मजमून कुछ यूँ था : अत्यंत प्यारी.. जान से प्यारी .. कुमारी विमला देवी पुत्री रामाधीर पांडे को मन्नू शर्मा का ढेर सारा प्यार पहुँचे।

इस संबोधन के तुरंत बाद शे'र था, जिसका मकसद कुल मिलाकर यह बताना था कि चिट्ठी जो है, वो खून से लिखी गई है, लाल स्याही मत समझ लेना। अलबत्ता मुर्गे की कुर्बानी का उसमें कोई जिक्र नहीं था। शे'र था :

लिखता हूँ खत खून से स्याही ना समझना।
करता हूँ सच्चा प्यार बेवफाई ना समझना।

प्रेमपत्र के पहले चरण में प्यार की भरपूर महिमा गाई गई थी। रोमांटिक फिल्मों के हीरो हीरोइनों के उदाहरणों द्वारा समझाया गया था कि प्रेम करना क्यों जरूरी है। प्रेम ना होने पर ज़िंदगी पहले झंड फिर खंड-खंड हो जाती है। इससे बचने के लिए प्यार करना चाहिए। इसके बाद के चरण में समझाया गया था कि प्यार मन्नू शर्मा से ही क्यों करना चाहिए। इस हिस्से में रोमांटिक डायलॉग, कसम-धरम, जिद, मान-मनौवल आदि की कॉकटेल थी। हर लाइन के बाद एक फिल्मी डायलॉग, तीन लाइने पूरे होते ही शेरो शायरी और पाँचवीं लाइन के बाद फिल्मी गाने की पहली दो लाइनों की व्यवस्था की गई थी। फिर प्यार स्वीकार करने के लिए पहले विद्या माता, फिर अपनी सगी माता और अंत में भगवान की कसम दी गई थी। विमला देवी द्वारा प्यार को स्वीकार न करने की स्थिति में, उन्हें मन्नू की मौत का दृश्य देखने को तैयार रहने की भी धमकी दी गई थी। साथ ही यह भी बताया गया था कि मन्नू के खानदान में अकाल मृत्यु को प्राप्त होने पर भूत बनने की परंपरा है। सात पीढ़ी पहले ही उनके एक पूर्वज ने भूत बनकर बड़ा उत्पात मचाया था। सो मन्नू भी उनसे प्रेरणा लेकर भूत बन सकते हैं और उन्हें भूत बनकर तंग कर सकते हैं ।

पत्र के अंत में, अगले दिन शाम को सात बजे, किसना के घोड़ों के तबेले में मिलने की अपील की गई थी। किसान के तबेले का चुनाव इसलिए किया गया था, क्योंकि वह विमला देवी के घर के पिछवाड़े के पास में ही था, सो विमला देवी वहाँ पहले पहुँच सकती थीं। इसके साथ ही एहतियातन मुलाकात का कोड भी दिया गया था, जिसमें तबेले में घुसने से पहले मन्नू को कुत्ते की आवाज में दो बार भौंकना होगा, रास्ता साफ होने की स्थिति में, कुमारी विमला दो बार बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ की आवाज निकालेंगी। तब मन्नू बाबू अंदर पधारेंगे। उसके नीचे यानी चिट्ठी में पूरा फुलप्रूफ प्रोग्राम बनाया गया था, ताकि कुमारी विमला मना कर ही ना सकें। दोनों मित्रों ने पत्र को कई बार पढ़ा और इस नतीजे पर पहुँचे कि खत सचमुच अभूतपूर्व टाइप का बन गया है। गुन्नू ने तो यहाँ तक कह दिया कि इस खत को पढ़ते ही कुमारी विमला देवी मन्नू बाबू के इश्क में पगला जाएंगी और उनसे प्रेम की भीख मांगने लगेंगी। उन्होंने आगे जोड़ा कि इतना फंडू खत किसी हीरोइन को भी मिल जाए तो वो भी प्यार की अपील स्वीकार कर लेगी। मन्नू ने उनकी इस बात को भविष्य के लिए मन में रख लिया। पर अभी मामला पहले प्यार की पहली चिट्ठी पहुँचाने वाला था, सो उन्होंने फिलहाल के लिए धीरज भी धर लिया।

इसके बाद मन्नू ने गुन्नू बाबू के मेहनताने के रूप में उन्हें बीड़ी के दो बंडलों और माचिस के साथ एक अदद धन्यवाद का भुगतान करके विदा किया। उसके बाद वह प्रिया मिलन के सपने देखने के काम में लग गए। कहना ना होगा कि उस रात उन्होंने 'सुहागरात है, घूँघट उठा रहा हूँ मैं' से लेकर 'बस दो या तीन बच्चे, होते हैं सबसे अच्छे ' तक के सारे गानों का दृश्यांकन देख लिया। पर हर दृश्य में हीरो की जगह खुद का और हीरोइन की जगह कुमारी विमला का चेहरा फिट करना नहीं भूले।

अगले दिन वह कॉलेज पहुँचे और पहली फुरसत में ही प्रेमपत्र कुमारी विमला देवी के हवाले कर दिया। विमला

ने गुस्से से उनकी तरफ देखा पर गुन्नू बाबू उन्हें बता ही चुके थे कि प्रेमपत्र मिलने पर लड़की का गुस्सा करना बनता है, पर उससे डरना नहीं चाहिए, सो वह नहीं डरे और आगे बढ़ गए। थोड़ा आगे जाकर उन्होंने देखा तो विमला देवी मुस्करा रही थीं। उनके कलेजे को चैन जो था, वह तसल्ली से पड़ गया। अब उन्हें पक्का हो गया कि शाम को उनके इश्क की पतंग जरूर आसमान में उड़ेगी। सो वह शाम के इंतजार के काम में लग गए।

शाम को ठीक सात बजे वह किसना के तबेले के बाहर थे। उनकी तैयारी पूरी थी, उनके दिल में धुकधुकी, गले में रूमाल, मुंह में खुशबूदार पान, हाथ में गुलाब का फूल और जेब में विमला को भेंट देने के लिए अफ़गान स्नो की शीशी थी। तबेले के गेट पर आकर उन्होंने इधर-उधर देखा फिर किसी को न पाकर चैन की साँस ली। उसके बाद उन्होंने अपने अंदर कुत्ते की आत्मा का प्रवेश कराया और पूरा दम लगाकर कुत्ते की आवाज में जोर से दो बार भूँकन क्रिया सम्पन्न की। इसके जवाब में तबेले के अंदर से दो की जगह चार बार म्याऊँ -म्याऊँ की आवाज आई। मन्नू समझ गए कि आग उधर से भी ज्यादा उधर लगी है। सो वह विमला- विमला की आवाज देते हुए, खुशी में लगभग दौड़ते हुए अंदर घुस गए पर वहाँ विमला रानी तो कतई नहीं थीं, अलबत्ता उनके सगे पिताश्री और दोनों हट्टे-कट्टे भाई, डंडों के साथ वहाँ साक्षात विद्यमान थे। वह समझ गए कि कुमारी विमला देवी ने बेवफाई का खेल खेल दिया। यह ज्ञान प्राप्त होते ही उनकी जेब में तसल्ली के जितने तोते थे, सारे एक-एक करके उड़ गए। उन्होंने खुद भी वहाँ से उड़ने की जुगत भिड़ाई, पर भाइयों ने उन्हे ऐसा मौका ही नहीं दिया। शुरुआती दौर में थप्पड़ों, घूंसों और लातों से उनकी और इश्क की खातिरदारी हुई, उसके बाद डंडों ने प्यार बांटने का काम संभाल लिया। वे तीनों मन्नू बाबू को पीटते जाएँ, साथ-साथ चिल्लाते जाएँ, "कमीने, अब लिखेगा अपने इलाके की छोरी कू प्रेमपत्र, बोल .. लिखेगा ?" मन्नू बाबू ने बहुतेरा ना ना.. ना जी.. का राग अलापा पर किसी ने उनकी ना सुनी। मन्नू को मुक्ति तभी मिली जब तक कि वे थक नहीं गए।

उनके जाने के बाद मन्नू बाबू काफी देर ऐसे ही पड़े रहे। फिर किसी तरह काँख-कूँखकर खड़े हुए। पूरा शरीर पके फोड़े-सा दुख रहा था। नाक पकौड़े की शेप में आ चली थी। कान गालों से चिपक लिए थे, आँखों के नीचे कालिख का मेक अप हो लिया था। किस्सा कोताह यह कि आशिक मियां की हालत खासी खराब थी। बस गनीमत थी कि कोई हड्डी नहीं चटखी थी। मन्नू बाबू ने कुमारी विमला को पूरी चार बद्दुआएं दीं, फिर गुन्नू को गिनकर आठ गालियां दीं और फिर लँगड़ाते-लँगड़ाते घर की ओर रवाना हो लिए। सोचा कि घर जाकर बहाना बना देंगे कि रपटकर गिर गए और फिर रात को हल्दी दूध पीकर सो जाएँगे। पर घर में घुसते ही उनकी रूह फ़ना हो गई। पिता जी, बड़े भैया और अम्मा आँगन में ही बैठे थे। उन्होंने बचकर अंदर के कमरे में जाने की कोशिश की, पर तभी पिता जी एकदम से सामने आ गए और कड़ककर बोले, "क्यों बे, सुनते हैं आजकल तुम मोहल्ले टोले की लड़कियों को प्रेमपत्तर बाँट रहे हो, क्या ये सच है ?" इससे पहले की वह कुछ ना-नुकर करते तब तक पिताजी का एक झापड़ बिजली की तेजी से उनके गाल से टकराय, वह गिर पड़े। उसके बाद पिता जी और भैया ने उनकी लेटी हुई अवस्था में ही तबीयत से सुताई की। अलबत्ता अम्मा उन्हें गरियाकर ही काम चलाती रहीं। यह कार्रवाई तब तक चली कि जब तक मन्नू बाबू बेहोशी को प्राप्त नहीं हो गए।

इस घटना के एक महीने बाद कहीं जाकर मन्नू बाबू ठीक हो पाए। पर तब तक उनकी प्रसिद्धि काफी फैल चुकी थी। वह जहां भी जाते, लोग उन्हें पहचान लेते, कहते, "देखो, वो जा रहा प्रेमपत्र वाला" कई बार तो दूर-दूर तक के गाँवों से लोग उन्हें देखने आते। कॉलेज जाना वैसे ही दूभर हो लिया था। वहाँ लड़के तो लड़के, लड़कियाँ तक उनकी खिल्ली उड़ातीं। हारकर उन्होंने कॉलेज जाना भी छोड़ दिया। उनके पिताजी ने उनका दाखिला उनके मामा के शहर में करा दिया। वहीं से उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की। नौकरी भी मिल गई, पर अपने शहर जाने का उन्होंने

नाम नहीं लिया। ठीक दस बरस बाद उन्हें मजबूरी में अपने शहर जाना पड़ा। वहीं खबर मिली कि विमला रानी अपने दो चिंटू-मिंटू और एक अदद पति के साथ मायके आई हुई थीं। यह सुनते ही मन्नू के सोये अरमान जाग उठे। उन्होंने सोचा कि अगर विमला रानी उन्हें मिली तो वह उनसे पूछेंगे जरूर कि उन्होंने उनके साथ ऐसी बेवफाई क्यों की?

इस बार भगवान ने भी उनकी सुन ली। उसी शाम को बाजार में उन्हें विमला रानी टकरा गयीं। अब वह दुबली-पतली से काफी गोल मटोल गति को प्राप्त हो चुकी थीं। फिर भी उन्हें देखते ही मन्नू बाबू के सोये हुए अरमान जाग लिए, पुराना इश्क याद आ गया, वह उनसे कुछ कहने ही वाले थे, तभी विमला ने जोर से आवाज देकर एक हट्टे-कट्टे आदमी को बुलाया और उन्हें दिखाकर बोलीं, "देखो जी, ये है मन्नू, इसी नासपीटे ने दस साल पहले हमें प्रेमपत्र लिखा था।" इतना सुनना था कि उनके पति ने गुस्से से उनकी ओर देखा। वह उनसे आस्तीनें चढ़ाकर उनकी ओर आया ही था कि मन्नू पतली गली खोजकर वहाँ से खिसक लिए। उसके बाद उन्होंने हमेशा के लिए अपना शहर छोड़ दिया।

इन बातों को लगभग चालीस साल बीत चुके हैं। मन्नू बाबू सठियाने की उम्र को प्राप्त हो चुके हैं, पर आज भी उनसे कोई प्रेमपत्र का जिक्र छेड़ देता है तो ऐसे बौरा जाते हैं जैसे लाल रूमाल देखकर सांड बौरा जाता है।

भगवान ! जैसा प्रेमपत्र तुमने मन्नू बाबू से लिखवाया, ऐसा सारे दुश्मनों से लिखवाइयो।

❋❋

समकालीन अभिव्यक्ति (त्रैमासिक)

(फार्म नं 4, नियम 8 के अनुसार स्वामित्व संबंधी विवरण)

समाचार-पत्र का नाम	: समकालीन अभिव्यक्ति
प्रकाशन अवधि	: त्रैमासिक
भाषा जिसमें प्रकाशित होती है	: हिन्दी
प्रकाशन का स्थान	: फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-30
संपादक का नाम	: उपेन्द्र कुमार मिश्र
नागरिकता व पता	: भारतीय, फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-30
मुद्रक का नाम	: उपेन्द्र कुमार मिश्र
नागरिकता व पता	: फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-30

उन व्यक्तियों के नाम व पता जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जे समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार या हिस्सेदार हों-उपेन्द्र कुमार मिश्र, फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं। 7, महरौली, नई दिल्ली-110030

मैं उपेन्द्र कुमार मिश्र, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार दिए गए विवरण सत्य है।

नई दिल्ली 12 मार्च, 2026 — उपेन्द्र कुमार मिश्र

रेखाओं के उस पार

★ पूजा अग्निहोत्री

जन्म : *4 सितंबर, छतरपुर (मध्य प्रदेश)*
शिक्षा : *परास्नातक (अंग्रेजी साहित्य), पीजीडीसीए।*
संप्रति : *स्वतंत्र लेखन, पटकथा लेखन ।*
प्रकाशित : *दैनिक हिंदुस्तान, दैनिक जागरण, पंजाब केसरी, राजस्थान पत्रिका, धर्मयुग आदि पत्रिकाओं में सतत रचनाओं का प्रकाशन ।*

सम्पर्क :
पूजा अग्निहोत्री W/O श्री प्रदीप अग्निहोत्री
रूम नंबर- 1236
उर्जानगर 'सी' ब्लॉक, बिजुरी
अनूपपुर (म. प्र.), - 484440
मोबाइल *-7987219458*
ईमेल: *agnihotrypooja71@gmail.com*

आज नित्या का एम्बियंस मॉल, वसंत कुंज में पहला दिन था। यह वही मॉल था, जहाँ आने का सपना उसने बरसों पहले देखा था । ग्राहक बनकर नहीं, बल्कि उस जगह का हिस्सा बनकर, जहाँ सौंदर्य, प्रतिस्पर्धा और आत्मविश्वास एक साथ साँस लेते हैं। सेल्स मैनेजर के रूप में यह उसकी नई पोस्टिंग थी।

सुबह सात बजते ही वह घर से निकल पड़ी। दिल्ली की हवा में उस दिन अजीब-सी बेचैनी थी । शायद बरसात की संभावना थी या फिर भीतर की हलचल का असर बाहर उतर आया था। ऑटो वाले ने बताया, "मैडम, ट्रैफिक बहुत भारी है, साउथ की तरफ़ सब जाम है।"

उसने हल्की मुस्कान दी । "जाम तो ज़िंदगी में हर कहीं है भैया। बस, खुल जाए समय से।"

साढ़े ग्यारह तक जब वह मॉल पहुँची, तब तक पार्किंग में कारों की कतारें लग चुकी थीं। शीशे की ऊँची इमारतें सूरज की रोशनी में चमक रही थीं। उसे लगा जैसे किसी और ही दुनिया में आ गई हो । सब कुछ सजा-सँवरा, पर कहीं कुछ बनावटी भी।

वह जल्दी में एस्केलेटर की ओर बढ़ी ही थी कि अचानक सामने से आती एक महिला और उसकी नन्हीं बच्ची से टकरा गई। थैला नीचे गिरा, कुछ पैकेट फर्श पर बिखर गए।

"ओह, आई एम सो सॉरी!" नित्या झुँझलाकर झुकी और सामान समेटने लगी। पर तभी उसकी नज़र उस महिला के चेहरे पर पड़ी, वही गहरी कत्थई आँखें, वही मुस्कराहट जो बरसों पहले सतना के स्कूल में उसके सामने चमका करती थी।

"म.. मा.. ओ माई गॉड! समन?" शब्द उसके मुँह से खुद-ब-खुद निकल गए।

महिला ठिठकी, फिर विस्मय और अपनत्व का मिश्रण चेहरे पर उभरा । "नीतू? तू... तू दिल्ली में?"

"हाँ, और तू? तू यहाँ क्या कर रही है?"

"बस, बेटी के लिए कुछ ख़रीदने आई थी।"

दोनों कुछ क्षणों तक बस एक-दूसरे को देखती रहीं । वक्त के बीचोबीच दो पुराने चेहरे खड़े थे, जिनके बीच सालों की धूल और कुछ अधूरी मुस्कराहटें

पड़ी थीं।

सतना के कन्या विद्यालय धवारी में दोनों एक ही स्कूल में थीं, मगर अलग विषयों की विद्यार्थी । नित्या विज्ञान में, और समन कला संकाय में।

नित्या हमेशा फर्स्ट आने वाली तेज़-तर्रार लड़की थी, जो पढ़ाई को ही भविष्य मानती थी। समन उसके उलट थी । रूप और रस में डूबी, अपने कपड़ों, हेयरबैंड्स और हँसी में खोई हुई।

स्कूल में उनका मिलना औपचारिक था । कभी कॉमन विषयों के नोट्स माँगने तक, कभी टिफ़िन बाँटने तक या कभी किसी स्पोर्ट्स डे की तैयारियों तक सीमित। फिर भी, एक धागा था जो दोनों को जोड़ता था। शायद नित्या की भीतर से झाँकती जिज्ञासा और समन की बाहरी निश्चिंतता का मेल।

समन के घर की चकाचौंध सब जानते थे । उसके पिता बड़े कॉन्ट्रैक्टर, शहर के संभ्रांत लोगों में गिने जाते थे।

वह अकसर नई साइकिल पर स्कूल आती, कभी-कभी भाई के स्कूटर पर। जबकि नित्या साइकिल के टायर में हवा भरती और बारिश में किताबों को पॉलिथीन में लपेटकर चलती थी। फिर भी दोनों के बीच दूरी उतनी ही थी जितनी दो दुनियाओं के बीच होती है । एक सम्पन्नता की, दूसरी सपनों की।

मॉल के उस छोटे-से पल में, बीस साल की वह दूरी अचानक पिघल गई थी।

"नंबर तो दे न ।" नित्या ने कहा।

समन झिझकी। फ़ोन की स्क्रीन पर उँगलियाँ अटकीं, फिर धीरे से बोली। "हाँ, ज़रूर।" और नंबर टाइप कर दिया।

"कभी घर भी बुला ले।" नित्या ने सहजता से कहा।

"हाँ, ज़रूर।" । समन की आवाज़ में एक हल्का कम्पन था, जैसे कुछ कहने से पहले ही वह अपने शब्दों को निगल गई हो।

"चल, फिर मिलते हैं नीतू।"

"हाँ, जल्दी।"

समन ने बेटी का हाथ थामा और भीड़ में खो गई।

नित्या बहुत देर तक वहीं खड़ी रही।

उसे लगा जैसे भीड़ में कोई पुरानी अधूरी कहानी अचानक सामने आई हो और फिर बिना बताए कहीं चली गई हो।

मॉल की चमक अब उसे बेस्वाद लगने लगी थी। कॉफी कप में झाग बैठ चुका थी और उसके मन में कोई पुराना सुर जाग उठा था । "किसी को भूलना चाहो तो पहले यादों को जगह देनी पड़ती है।"

उसने अचानक अपना बैग उठाया और बॉस को मैसेज किया । "आज नहीं आ पाऊँगी, कल से रेगुलर ज्वाइन करती हूँ।"

उसने ऑटो पकड़ा और रास्ते में बैठते ही आँखें बंद कर लीं। ट्रैफिक धीरे-धीरे रेंग रहा था, पर उसके भीतर की गाड़ी तेज़ दौड़ने लगी थी । वह लौट गई थी सतना में, उस गर्म दोपहर में जब समन पहली बार उसके घर आई थी।

घंटी बजी थी। माँ ने दरवाज़ा खोला। सामने खड़ी थी समन और उसकी माँ।

उनके हाथ में किताबें थीं।

"बेटा, ज़रा इसको पढ़ा दिया कर" । समन की माँ ने कहा । "कुछ ध्यान नहीं पढ़ाई में, बस। अपनी ही दुनिया में रहती है।"

नित्या की माँ ने हँसकर कहा । "नीतू तो पढ़ाई में डूबी रहती है, इसे भी साथ में बैठा लिया कर।"

उस दिन से शाम की घड़ी दोनों के नाम हो गई। नित्या समन को गणित के सूत्र समझाती और समन हर बार कुछ न कुछ उपहार लेकर आती । कभी घर की बनी कुकीज़, कभी "फ़्रूट-क्रीम, कभी महँगी पेंसिलें।

धीरे-धीरे दोनों के बीच एक अनोखा रिश्ता बनने लगा । एक तरफ़ मेधा, दूसरी तरफ़ मासूमियत। कभी समन कहती । "नीतू, तू तो बहुत गंभीर रहती है... ज़रा हँसना सीख।" नित्या जवाब देती । "और तू कभी ध्यान से बैठना सीख।"

हँसी-मज़ाक में वे शामें यूँ ही बीतती रहीं, लेकिन एक दिन समन का चेहरा बुझा हुआ था।

"क्या हुआ?" । नित्या ने पूछा।

वह देर तक चुप रही, फिर बोली । "आफ़ताब... अब्बू को पता चल गया।"

"आफ़ताब?"

"हाँ, वो मेरे कॉलेज का है।"

तो क्या हुआ तुम एक ही धर्म के हो, निकाह कर सकती हो उससे।

"यही तो दिक्कत है, वो शिया है और हम सुन्नी।"

"तो क्या हुआ, हो तो दोनों

मुस्लिम ही न?"

"है तो बहुत कुछ।" । उसके शब्दों में थकावट थी।

"कोई तो उपाय निकल ही जाएगा।"- नित्या ने सांत्वना देनी चाही।

"अब्बू ने कहा, 'घर की इज्ज़त मिट्टी में मिला देगी।'"

नित्या बहुत देर तक उसे देखती रही। उसे पहली बार महसूस हुआ कि धर्म और प्रेम के बीच जो दीवारें हैं, वे और किसी को नहीं, बस औरतों को कुचलती हैं। उस रात नित्या देर तक छत पर बैठी रही। हवा में हल्की ठंडक थी, पर भीतर एक बेचैनी जल रही थी।

समन की आँखें बार-बार याद आ रही थीं । वह डर और प्रेम के बीच झूलती नज़रें, जैसे कोई परिंदा खुली हवा के सामने भी उड़ने से डर रहा हो। अगले दिन जब समन पढ़ने आई, तो नित्या ने धीरे से कहा, "मुझे लगता है तेरे अब्बू मान जाएँगे।"

समन ने सिर हिलाया, "कभी नहीं। हमारे यहाँ बिरादरी से बाहर शादी हराम मानी जाती है।"

"आफ़ताब क्या कहता है, कोर्ट मैरिज भी तो हो सकती है?"

"वो भी डरता है, पर कहता है। 'समन, मैं इंतज़ार करूँगा जब तक तू खुद हाँ न कहे, कोर्ट मैरिज को वह भी हामी नहीं भरता।'"

नित्या कुछ देर चुप रही। उसने देखा । समन की आँखों में एक अजीब चमक थी, जो डर से जूझते हुए भी बुझी नहीं थी। वह सोच रही थी, कितनी लड़कियाँ होंगी जो अपने प्रेम को धर्म, परिवार या समाज की आग में झोंक देती हैं, और फिर भी रोज़ मुस्कराने की कोशिश करती हैं।

कुछ महीनें बाद नित्या का बारहवीं का रिज़ल्ट आया । पूरे जिले में अव्वल। समन पास नहीं हो पाई । उसका एक विषय में कंपार्टमेंट था। मगर उस शाम वह नित्या के घर मिठाई का डिब्बा लेकर आई।

"देख, तेरे लिए गुलाबजामुन लायी हूँ। आज तू पास हुई है, तो मुझे भी लग रहा है, मैं पास हो गई।"

नित्या मुस्करा पड़ी । "तू भी पास हो ही जाएगी अगली बार।"

"पता नहीं।" समन की आवाज़ में अब भी वही हिचक थी । "घर वाले अब कॉलेज नहीं भेजेंगे शायद।"

नित्या के घर के बाहर जाते-जाते समन ने कहा । "नीतू, अगर मैं कभी गुम हो जाऊँ, तो आफ़ताब को मत कोसना। वो अच्छा है, बहुत ही अच्छा।"

उसने मुड़कर देखा । समन चली जा रही थी, पर जैसे उसके पीछे कोई परछाई चल रही थी । डर, लाचारी, और फिर भी उम्मीद की एक डोर।

इसके कुछ महीनें बाद नित्या इंदौर चली गई पढ़ाई के लिए। नई जगह, नए दोस्त, नई दुनिया । पर कुछ खाली-खाली-सा रहा हमेशा। कभी-कभी वह डाक से समन को चिट्ठी लिखती, मगर जवाब नहीं आता। फिर एक दिन घर से खबर मिली, "समन की शादी तय हो गई है, किसी तौफीक अहमद से, जो भोपाल में बिल्डिंग कॉन्ट्रैक्टर है।"

माँ ने कहा था, "देख बेटा, अच्छा हुआ। लड़की को अच्छा घर मिल गया।"

नित्या ने कुछ नहीं कहा। बस खिड़की से बाहर देखा । जहाँ बारिश की बूंदें शीशे पर ऐसे फिसल रही थीं, जैसे कोई कहानी लिखने की कोशिश कर रही हों, जिसे कोई पढ़ना नहीं चाहता।

समय बीतता गया। नित्या अब नौकरी में थी। पहले सतना, फिर भोपाल, और अंततः दिल्ली। विवाह हो चुका था, एक बेटी थी । लेकिन भीतर कहीं एक कोना अब भी अनकहा था। वह कोना जो किसी की कहानी अधूरी छोड़कर चला गया था।

एक दिन ऑफिस में अचानक आफ़ताब सामने आ गया। सूट पहने, हाथ में फ़ाइल लिए, यह वही आफ़ताब था, जिसे उसने समन की बातों में जाना था।

"आप नित्या हैं न?"

नित्या चौंकी, "आप..आफ़ताब?"

वह मुस्कराया। "हाँ, वही बदनाम आफ़ताब।"

दोनों हँस दिए, मगर हँसी के पीछे एक चुप्पी थी, जो बहुत कुछ कह रही थी।

काग़ज़ों पर साइन करते हुए नित्या ने सहज पूछा । "समन कैसी है?"

आफ़ताब की उँगलियाँ ठिठक गईं। वह बोला। "अब क्या बताऊँ, उसने जो करना था, वो कर लिया। मैं भी अपने हिस्से की गलती भुगत चुका हूँ।"

उसकी आवाज़ में तल्ख़ी नहीं थी, थकान थी।

"हम दोनों ने अपने-अपने घर बचाने के लिए खुद को खो दिया।" इतना कहकर वह उठ गया।

नित्या देर तक उस कुर्सी को देखती रही । जहाँ कुछ देर पहले कोई बैठा था, जो आज भी किसी की आँखों में ज़िंदा था। रात को जब उसने माँ से ज़िक्र किया तो माँ बोलीं, "हूँ... वही आफ़ताब? सुना ही उसके बारे में.. अच्छा लड़का था। सुना है उसने अपने पिता के कहने पर अपने से चार साल बड़ी विधवा से शादी की थी। भाई की गलती का दंड उसे मिला, वह पहले से उसके भाई से गर्भवती थी, लेकिन वह मुआ मुकर गया और ये बड़ा पीर बनने के लिए बाप का आज्ञाकारी बन बैठा।"

नित्या को लगा जैसे किसी ने उसके भीतर की दीवार पर दस्तक दी हो। कितने लोग हैं जो अपने परिवार की 'इज्ज़त' के लिए अपनी ज़िंदगी को जलाते हैं और राख को भी मुस्कराहट का नाम दे देते हैं।

उसने डायरी में लिखा, "कभी-कभी हम जो छोड़ते हैं, वही हमें सबसे ज्यादा थामे रखता है।"

सोशल मीडिया का ज़माना आया। तो नित्या ने भी कई जगह अपने अकाउन्ट्स बनाये।

नित्या ने भी फेसबुक अकाउंट खोला, कुछ मित्र जुड़े। एक दिन किसी मित्र की वॉल पर एक शादी का कार्ड देखा । "तौफीक और समन के निकाह की सालगिरह पर शुभकामनाएँ।"

तस्वीर में समन थी । मुस्कराती हुई, हाथ में छोटी बच्ची को थामे। चेहरे पर वही रौनक, वही उजली त्वचा, पर आँखों में हल्की उदासी का साया।

नित्या ने कमेंट किया । "तू बहुत सुंदर लग रही है, समन खुश रहना।"

समन ने जवाब दिया । "तू भी, नीतू। मेरी पुरानी दुनिया की आख़िरी कड़ी।"

उस जवाब में एक गहरा अर्थ छिपा था । जैसे वह कह रही हो, 'अब सब पीछे छूट चुका है।'

कुछ वर्षों बाद ज़िंदगी फिर अपने ढर्रे पर लौट आई। नित्या अब दिल्ली में स्थायी हो चुकी थी । नौकरी, बेटी की पढ़ाई, पति का ट्रांसफर-पहिया, सब कुछ जैसे मशीन की लय में घूम रहा था। पर किसी दिन जब बारिश होती या वसंत की हवा बहती तो उसे याद आता,"समन शायद अब भोपाल में होगी, शायद अब बेटी स्कूल जाती होगी...।"

वह यह सोचकर मुस्कराती और फिर उसी क्षण भीतर कहीं एक खालीपन उतर आता।

फेसबुक पर अब उसे समन का अकाउंट नहीं दिखायी देता था। कुछ महीनों तक नित्या ने खोजा, फिर मान लिया, "शायद उसने सब मिटा दिया होगा, जैसे हम कभी स्कूल की कॉपी से पुराने पन्ने फाड़ देते थे।"

एक दिन मॉल में वही घटना घटित हुई जो मानो किसी नियति की भूमिका थी। समन अचानक सामने आ गई थी, बेटी के साथ। नित्या ने जब उसे दोबारा देखा, तो ध्यान से महसूस किया । उसकी हँसी अब बहुत संयमित थी, आवाज़ में ठहराव था और आँखों में एक थकान जो बहुत कुछ कहती थी। वह जल्दी में थी, कुछ खरीदे बिना लौट गई थी और नंबर देते वक्त उसकी उँगलियाँ काँपी थीं।

उस रात नित्या ने उसे कॉल किया, पर फ़ोन नहीं उठा। तीन दिन बाद भी जवाब न मिला। एक शाम जब वह ऑफिस से लौटी तो अचानक मन हुआ, "देखूँ, फेसबुक पर फिर आई क्या?" उसने खोजा और एक नया नाम सामने आया शबनम तौफीक। प्रोफाइल पिक्चर में वही चेहरा था, पर थोड़ा ढका हुआ । हिजाब के पीछे से झाँकती वही कत्थई आँखें। उसने रिक्वेस्ट भेजी। कुछ घंटे बाद 'एक्सेप्टेड' का नोटिफिकेशन आया।

नित्या ने तुरंत लिखा, "हाय शबनम, कैसी हो?" सामने से जवाब आया, "हाय नीतू... बहुत दिन बाद!"

वह चौंकी, "समन?" सामने से हँसी का इमोजी आया, "हाँ, अब सब मुझे शबनम कहते हैं।"

दोनों में चैट शुरू हुई। धीरे-धीरे शब्दों के बीच छिपे साल खुलते चले गए। समन ने बताया, "तौफीक की कार एक्सीडेंट में मौत हो गई थी। दो साल तक मैं ससुराल में रही, फिर ससुराल वालों ने घर से निकाल दिया। बेटी को साथ लेकर सतना लौट आई। किसी ने हाथ नहीं बढ़ाया। फिर एक पुराने जानकार ने सलाह दी, "दिल्ली चली जा, यहाँ सब नया मिल जाएगा।"

"तो तू अब यहीं है?" "हाँ, एक प्ले-स्कूल में काम करती हूँ। उसी से बेटी की फीस निकल जाती है।"

"और बाकी?"

"बाकी बस दुआएँ हैं।"

नित्या के हाथ काँप गए। वह बहुत देर तक स्क्रीन पर टाइप करती रही और मिटाती रही। फिर बस इतना लिखा,"कल मिल सकती है?"

सामने से जवाब आया, "क्यों नहीं, किड्ज़ी स्कूल, वसंत कुंज में हूँ। दोपहर के बाद आ जाना।"

अगले दिन नित्या वहाँ पहुँची। छोटे बच्चों की हँसी और रंगों के बीच उसे समन एक कोने में बैठी मिली । बच्चों की ड्रॉइंग्स सहेजते हुए।

नित्या ने पुकारा, "समन।"

वह मुड़ी और अगली ही क्षण बाँहों में भर ली। दोनों देर तक रोती रहीं। जैसे किसी ने बरसों का जमा पानी एक साथ बहा दिया हो।

"तूने कहा भी नहीं।" नित्या के स्वर में शिकायत थी।

समन बोली,"कहती भी तो क्या कहती नीतू? ज़िंदगी किसी किताब की कहानी थोड़े है, जो बार-बार लिखी जा सके।"

समन ने बताया, "तौफ़ीक ने कभी अपनी बचत से दिल्ली में इन्वेस्मेंट के लिए एक फ्लैट लिया था, अब इस बुरे वक्त में उसके काम आया, वरना ससुरालवालों के घर से निकालने के बाद सिर पर छत भी न होती।"

वह हँसना चाहती थी, पर हँसी में आँसू थे।

कुछ देर बाद नित्या ने धीरे से कहा,"जो तुम्हारी जिन्दगी में घटा, उस बारे में आफ़ताब को पता है?"

समन ने सिर झुका लिया, "नहीं, शायद वो अब भी अपने अतीत को पाप समझता होगा।"

"अगर मैं उसे मिलवाऊँ?"

वह चौंक, "नहीं नीतू। मत कर ऐसा, जो बीत गया, उसे बीत जाने दे।"

पर नित्या के भीतर कोई आवाज़ थी जो कह रही थी,"कुछ मोती बिखरे हैं रास्ते पर, अगर उठा लिए जाएँ तो माला फिर से गुँथ सकती है।"

कुछ दिन बाद नित्या ने आफ़ताब से संपर्क किया। उसने उसे समन के बारे में बताया।

आफ़ताब कुछ पल चुप रहा, फिर धीमे स्वर में बोला,"मैं हमेशा उससे माफी माँगना चाहता था। पर पता नहीं था, वो कहाँ है।"

"पहले तुम बताओ तुम कहाँ हो?"

"बेगम के इन्तकाल के बाद मेरा सतना से मन उचाट हो गया, इधर दिल्ली में एक सीनियर तीस हजारी कोर्ट में प्रैक्टिस कर रहे थे, उन्होंने बुला लिया, पहले कुछ दिन उनके चैंबर में बैठता था, अब अपना चैंबर मिल गया, यहीं रोहिणी में फ्लैट है।"

"क्या ही इत्तेफाक है, अभी मेरे हसबैंड का दिल्ली ट्रांसफर हुआ तो मैंने भी इधर जॉब शुरू की है, समन भी दिल्ली ही रह रही और तुम भी... तब तो जल्दी मुलाकात करते हैं... मिल बैठेंगे... तीन... ।"

दोनों की मुलाकात नित्या ने तय की। एक छोटे-से कॉफी हाउस में, जो उसके फ्लैट के पास ही था... इतना पास कि उसकी खिड़की से दिखाई देता था... पहले समन झिझकी, पर जब आफ़ताब सामने आया, तो समय जैसे ठहर गया। आफ़ताब बोला,"कैसी है तू, समन?"

समन की आँखें भर आईं। "जितनी टूटी थी, उतनी जुड़ने की कोशिश कर रही हूँ।"

"और खुशी?"

"मेरी जान है वो।"

दोनों चुप हो गए। वक्त जैसे बीस साल पीछे चला गया। फिर आफ़ताब ने कहा,

"अगर आज भी तेरा दिल कहे, तो चल। नई शुरुआत करें। इस बार किसी के नाम पर नहीं, अपने नाम पर जिएँगे।"

नित्या खिड़की के पास खड़ी थी। सामने वाले फ्लैट की बालकनी में समन और आफ़ताब साथ खड़े दिखाई दिए। शाम की रोशनी में दोनों के चेहरों पर अजीब-सी शांति थी। नीचे लॉन में बच्चे खेल रहे थे। खुशी, साबिर और कुछ और छोटे-छोटे बच्चे।

नित्या ने मुस्कराते हुए धीरे से खिड़की बंद कर दी। दिल में कहीं हल्का-सा डर भी था, "क्या ये साथ रह पाएँगे?"

उसने मोबाइल उठाया । समन का मैसेज था, "सब कुछ तय नहीं होता नीतू, कुछ बातें बस वक्त तय करता है।"

नित्या ने स्क्रीन को देखा, फिर फोन बंद कर दिया। कमरे में हल्की रोशनी थी, और बाहर शाम उतर रही थी। वह खुद से बोली, "शायद कुछ मोती अभी भी बिखरे हैं रास्ते पर और शायद, कुछ उठाने बाकी हैं।"

खिड़की के बाहर हवा चली । कहीं दूर, किसी बच्चे की हँसी गूँजी।

❋❋

दस्तख़त

* अनिल पुरोहित

समकालीन हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखक ।

सृजन :

'वो कौन थ', 'उस पार', 'सुबह का भूला', 'रहस्यमय कॉल', 'भूख का उसूल', 'मेरी इक्यावन कविताएं', 'शापित महल', 'फ़ाइल नं. 303', और 'जीवन की डगर'।

सम्पर्क :

-सांड चौक, सुजानगढ़-331507 (राज.)

Mail: anilpurohit123@gmail.com

मुंबई की गीली सुबह में सन्नाटा एक अजनबी की तरह दरवाज़ों से लिपटकर बैठा था। वर्ली सी-फेस की चौड़ी सड़कें, जिन पर आम दिनों में रफ्तार की सरसराहट होती थी, आज कुछ ख़ामोश थीं। शायद समुद्र भी किसी बीती बात की तरह चुप बैठा था-बस अपनी गहराइयों की लहरें भेजता हुआ।

आदित्य सिंह ने अपनी कार का दरवाज़ा बंद किया और ब्रीफ़केस को छाती से लगाते हुए बंगले की ओर बढ़े। 'आश्रय' - ये नाम उसके कानों में किसी कविता की तरह गूँजा, पर आंखों के सामने खड़ा वह दोमंज़िला पुराना बँगला ज़िंदगी से कुछ नाराज़-सा दिख रहा था। दीवारों पर वक्त की फफूँद थी, बॉलकनी में पड़े पौधे सूखकर कंकाल बन चुके थे।

वसीयतों के मामले अक्सर नीरस होते हैं, एक टेबल, दो कुर्सियाँ, कुछ काग़ज़ और कुछ गवाह। पर ये मामला कुछ अलग था - शायद इसलिए कि जिस औरत की वसीयत उसे क्रियान्वित करनी थी, वह लेखिका थी... और लेखक कभी मरते नहीं। वे शब्दों में जीवित रहते हैं...और शब्द जब वसीयत बन जाएँ, तो क़ानून भी थमकर सोचता है।

दरवाज़ा खुला था। आदित्य ने अंदर झाँका।

"आप आदित्य हैं?" एक हल्की आवाज़ आई - गुनगुनी, लेकिन भीतर तक उतर जाने वाली।

सीढ़ियों के छोर पर खड़ी थी - सिया। उम्र कोई 24-25, सादी -सी नीली कुर्ती -पायजामा, पर आँखों में गहराई। उसने बिना पूछे ही सिर हिलाकर आदित्य को भीतर बुला लिया, मानो दोनों के बीच पहले से कोई मौन अनुबंध था।

ड्राइंगरूम में वह आदित्य को बैठाकर चाय लेने चली गई। दीवारों पर किताबों की कतारें थीं - 'तपती स्याही', 'रूपांतर', 'अनकहे के नाम' - वसुधा राय की किताबें, जो अब साहित्य की पाठ्यसूचियों में दर्ज थीं, पर यहाँ उनके स्पर्श से एक अंतरंगता बह रही थी।

"आप जानती हैं कि मैं क्यों आया हूँ?" आदित्य ने कुर्सी पर बैठते ही पूछा।

सिया चाय की ट्रे रखते हुए धीरे से मुस्कुराई, "आप वसुधा जी की आखिरी वसीयत के ट्रस्टी हैं और मैं... उनकी देखभाल करने वाली या शायद कुछ और भी।"

"कुछ और भी?" आदित्य ने भौंहें तानीं।

सिया ने उत्तर नहीं दिया। वह खिड़की की ओर देखने लगी - जहाँ से समुंदर की लहरें दीवारों से टकरा रही थीं। फिर वह धीमे से बोली - "उन्होंने

मुझे सिर्फ खाना नहीं खिलाया, उन्होंने मुझे शब्द दिए। एक स्त्री की दूसरी स्त्री को दी गई सबसे बेशकीमती विरासत – सोचने का साहस।"

आदित्य कुछ पल उसे देखता रहा। उस क्षण में सिया किसी अनजाने राग की तरह लग रही थी – धीमी, पर मोहक।

"लेकिन क़ानून भावना नहीं देखता," वह बोला।

"शब्द देखते हैं," सिया का जवाब तत्काल आया।

आदित्य चुप हो गया।

दोपहर तक बंगले का हर कोना उसने देख डाला। वसुधा राय का कमरा, जहाँ दीवार पर एक लकड़ी का फ्रेम टंगा था – जिसमें एक वाक्य खुदा था – "लिखना, जीने का दुस्साहस है।"

टेबल पर एक डायरी रखी थी, खुली हुई। आखिरी पन्ने पर वही हस्ताक्षर थे, जो वसीयत में थे – वसुधा राय की कलम से लिखा गया नाम और उसके नीचे तारीख़ – मृत्यु के एक दिन पहले की।

"आप जानती हैं कि इस दस्तख़त को अदालत में साबित करना होगा?" आदित्य ने पूछा।

सिया ने सिर हिलाया, "जानती हूँ। पर यह भी जानती हूँ कि यह वसीयत एक काग़ज़ नहीं, एक स्त्री की अंतिम पुकार है – जिसे उसने किसी बेटी के नाम लिखा है, जो कभी जन्मी नहीं... बस उसकी कहानियों में आकार लेती रही।"

आदित्य पहली बार हारा हुआ-सा लगा – लेकिन यह हार तर्क की नहीं थी, यह हृदय की वह हार थी, जिसे स्वीकार कर लेने में भी एक सुख होता है।

शाम तक जब वह बंगले से निकलने लगा, तो सिया ने एक मोटा लिफ़ाफ़ा उसे थमाया –"यह वसुधा जी के हाथों से लिखे कुछ पत्र हैं – आपके लिए। उन्होंने कहा था कि वसीयत को समझने से पहले, इन पत्रों को पढ़िएगा।"

आदित्य ने वह लिफ़ाफ़ा ब्रीफ़केस में रखते हुए देखा – सिया की आँखों में एक गहरी पीड़ा छिपी थी। शायद वह आदित्य से कुछ कहना चाहती थी, पर शब्दों का चुनाव नहीं कर पा रही थी।

"कल मैं फिर आऊँगा," आदित्य बोला।

"कभी-कभी जवाब तलाशने के लिए दोबारा आना ज़रूरी होता है," सिया ने कहा।

रात को जब आदित्य अपने अपार्टमेंट में लौटा तो उसने वो पत्र खोले।

पहले ही पत्र की पहली पंक्ति थी –"प्रिय आदित्य, क़ानून के हाथ लंबे होते हैं, पर शब्दों के हाथ उससे भी लंबे – वे आत्मा तक पहुँचते हैं। क्या तुम आत्मा को पढ़ सकोगे?"

आदित्य उस रात सो नहीं सका।

– – –

रात का तीसरा पहर था। मुंबई की फ़िज़ा में नींद की चादर उतर चुकी थी, लेकिन आदित्य के अपार्टमेंट में दीवार घड़ी की टिक-टिक जैसे किसी गहरे रहस्य की दस्तक दे रही थी। वह डायरी का पन्ना थामे बैठा था-वह डायरी, जो अब सिर्फ काग़ज़ नहीं रही थी, बल्कि एक जीवित दस्तावेज़ बन चुकी थी-वसुधा राय की आत्मा की स्याही से भरी हुई।

उसने दूसरा पत्र खोला।

"प्रिय आदित्य,

जब कोई स्त्री अपने शब्दों को अपनी संतान मानने लगती है तो समाज उसकी कोख पर नहीं, उसकी कलम पर प्रश्न उठाता है। मैंने सिया को कोख से नहीं, कलम से जन्मा है। क्या तुम उसे उसकी जगह दे सकोगे?"

एक पल के लिए आदित्य को लगा जैसे कोई अदृश्य बल उसके भीतर उतर रहा है। उसने एक गहरी साँस ली। शायद यह वसीयत अब संपत्ति का मामला नहीं रहा था-यह एक दृष्टिकोण की परीक्षा थी।

अगली सुबह वह फिर 'आश्रय' पहुँचा। दरवाज़ा इस बार सिया ने खुला रखा – वो सीढ़ियों पर बैठी थी, एक पुरानी किताब हाथ में और एक खामोश मुस्कान होठों पर लिए।

"आज तुम देर से आए," उसने बिना देखे कहा।

"शायद मैंने वक्त को समझने की कोशिश की" आदित्य ने उत्तर दिया।

दोनों अंदर आए। वसुधा राय का कमरा अब वैसा ही था, लेकिन आदित्य की आँखें अब पहले जैसी नहीं थीं। उसने कमरे की एक-एक चीज़ को संवेदना से देखा। किताबें अब सूचना नहीं, इतिहास की तरह दिखने लगी थीं। उस मेज़ की दराज़ से सिया ने लकड़ी की एक छोटी-सी संदूकची निकाली।

"ये रही वो असली वसीयत," उसने कहा।

"असल वसीयत?" आदित्य चौंका।

"हाँ। जो उन्होंने मेरे साथ साझा की थी–काग़ज़ों से नहीं, स्पर्श से। इसे पढ़ो।"

संदूकची में सिर्फ एक काग़ज़ था, उस पर एक ही पंक्ति, "जिसने मेरे शब्दों को अपने जीवन में जिया हो, वही मेरी विरासत का हक़दार है।"

आदित्य अवाक् रह गया।

"क्या कोई अदालत इसे स्वीकार करेगी?" वह फुसफुसाहट भरे स्वर में बोला।

"क्या कोई अदालत भावना को नकार सकती है?" सिया की आवाज़ में कोई काँपता हुआ विश्वास था।

"पर उस वसीयत में एक और नाम है–'आरव राय'। तुम्हें उसका कुछ पता है?"

सिया की आँखें धुँधली हो गईं। "पता है, और नहीं भी। वो वसुधा जी का भांजा था–विदेश में रहता था। पर उन्होंने हमेशा कहा, 'आरव ने मेरी कहानियाँ कभी नहीं पढ़ीं, सिया ने उन्हें जिया है।'"

"पर कानून.."

"अगर कानून न्याय नहीं, केवल अधिकार देखे तो न्याय अधूरा रह जाता है।" सिया का उत्तर फिर से वही था–भावुक, सधा हुआ।

उस शाम जब आदित्य वापस लौटा, तो उसने फैसला कर लिया था–उसे अदालत जाना है, लेकिन शब्दों को हथियार बना कर। उसने वसुधा राय के हर पत्र, हर किताब और सिया की बातों को मिलाकर एक रिपोर्ट तैयार करनी शुरू की। वह जानता था, यह एक मुकदमा नहीं–एक विचार की लड़ाई है।

और इस लड़ाई में शायद सच की कोई गवाही नहीं देगा–सिवाय शब्दों के।

आदित्य ने उस रात डायरी के आखिरी पत्र को खोला:

"प्रिय आदित्य,

जब तुम ये अंतिम पत्र पढ़ रहे होगे, शायद तुम यह समझ चुके होगे कि मेरी वसीयत केवल घर या धन नहीं थी–वह एक विचार की वसीयत थी। सिया को अपनाकर तुम मुझे अपनाओगे। यदि तुममें साहस हो तो अदालत में यह साबित करो–कि शब्दों की विरासत सबसे बड़ी होती है।"

उस रात आदित्य को नींद फिर नहीं आई, पर पहली बार उसे नींद की ज़रूरत भी नहीं थी। उसे अब केवल एक रास्ता दिख रहा था–जिस पर चलकर वह किसी की ज़िंदगी को उसका नाम लौटा सकता था।

– – –

मुंबई की अदालत, जहाँ न्याय की उम्मीद अक्सर काग़ज़ों के ढेर में दबकर रह जाती है, उस दिन कुछ अलग थी। सामने खड़े वकील, जज और दीवार की घड़ी – सब कुछ वैसा ही था, पर एक बात नई थी–आदित्य के भीतर का यक़ीन। वह पहली बार किसी मुक़दमे में खुद को वकील से ज्यादा एक गवाह समझ रहा था–किसी स्त्री की आत्मा की, उसकी कलम की, उसकी छुपी हुई संतति की गवाही।

'माई लॉर्ड,' आदित्य ने गहराई से बोलना शुरू किया, "यह मुक़दमा एक फ्लैट, एक बैंक लॉकर या एक नाम के हक़ का नहीं है। यह एक स्त्री के उस मौन की लड़ाई है, जिसे उसने समाज की दीवारों में घोंट दिया था, लेकिन अपने शब्दों में अमर कर दिया।"

कक्ष में सन्नाटा छा गया।

"वसुधा राय ने एक वसीयत छोड़ी–लिखित और मौन दोनों। एक वसीयत, जो काग़ज़ों में है–और एक, जो उसकी आत्मा में थी। आज मैं अदालत के सामने दोनों पेश करता हूँ।"

उसने वह संदूकची जज के सामने रखी। काग़ज़ की एक पंक्ति– "जिसने मेरे शब्दों को अपने जीवन में जिया हो, वही मेरी विरासत का हक़दार है।"

"इस वाक्य का कोई कानूनी आधार नहीं, शायद," विरोधी वकील खड़ा हो गया। "यह भावनात्मक हथियार है, न्यायिक दस्तावेज़ नहीं।"

"पर क्या न्याय केवल तकनीकी दस्तावेज़ों से तय होगा?" आदित्य की आवाज़ अब फौलाद जैसी थी। "क्या विरासत का अर्थ केवल संपत्ति है? क्या एक लेखिका की वसीयत में उसका विचार, उसकी चेतना कोई स्थान नहीं रखती?"

अदालत में सिया को गवाही के लिए बुलाया गया।

उसका चेहरा शांत था, आँखें गहरी। उसने हलफनामा लिया, पर जब बोलना शुरू किया तो उसकी आवाज़ में किसी नदी की तरह वेग और तरलता थी–

"मैं सिया हूँ। अनाथालय में पली–बढ़ी। एक दिन वसुधा जी मुझे एक कविता प्रतियोगिता में मिलीं। उन्होंने मेरी कविता पढ़ी और कहा–'तुम मेरी परछाई हो।' मैं उनके साथ रही, उनके शब्दों में जीती रही। उन्होंने कभी मेरी माँ होने का दावा नहीं किया, पर मैं जानती हूँ, मैंने माँ जैसा स्पर्श केवल

वहीं पाया।"

"क्या उन्होंने कभी कहा कि तुम उनकी वारिस हो?"

'नहीं, 'सिया मुस्कुराई, 'उन्होंने कहा-'तुम मेरी ज़ुबान हो। अगर मैं चुप हो जाऊँ तो भी तुम बोलोगी।' क्या इससे बड़ी वसीयत कुछ होती है?

जज गम्भीर था। उसने विरोधी पक्ष को देखा।

"आरव राय से संपर्क हो चुका है।" विरोधी वकील बोला। "वह विदेश से आ चुका है।"

दरवाज़ा खुला। एक लंबा, पराया चेहरा भीतर आया। आरव-वसुधा जी का भांजा।

"मैंने उन्हें अंतिम बार पंद्रह वर्ष पहले देखा था," उसने कहा, "मुझे इस विरासत में कोई दिलचस्पी नहीं। पर मुझे लगता है, अगर मासी जीवित होतीं तो वो यही चाहतीं-जो आपने कहा।"

एक असहज सन्नाटा अदालत पर छा गया।

जज की कलम चली। आवाज़ आई- "इस अदालत की दृष्टि में वसीयत केवल दस्तावेज़ नहीं, इच्छाओं की अभिव्यक्ति भी होती है। न्याय केवल काग़ज़ों पर नहीं, भावनाओं पर भी चलता है। वसुधा राय की असली विरासत-उनकी आत्मा-इस न्यायालय में सिया को सौंपी जाती है।"

बाहर बारिश हो रही थी। सिया और आदित्य अदालत की सीढ़ियों पर खड़े थे।

'अब क्या करोगे?' सिया ने पूछा।

आदित्य ने आसमान की ओर देखा और बोला, "अब मैं तुम्हारी कहानी लिखूँगा, ताकि यह वसीयत कभी काग़ज़ों में कैद न हो-बल्कि लोगों की आत्मा में बस जाए।"

सिया मुस्कुरा दी।

"शब्दों की सबसे बड़ी गवाही यही होती है-जब वे काग़ज़ से निकलकर ज़िंदगी बन जाते हैं।"

मुंबई की शाम कोरियन कैफ़े की खिड़की से झांक रही थी और टेबल पर रखी कॉफी की भाप में एक नई कहानी आकार ले रही थी। आदित्य ने लैपटॉप बंद कर दिया था-शब्दों की यात्रा पूरी हो चुकी थी। सामने बैठी सिया के चेहरे पर अब अनाथालय का साया नहीं था, बल्कि एक नई पहचान की पूर्णिमा चमक रही थी।

छह महीने बीत चुके थे उस ऐतिहासिक फैसले को, जिसने अदालत में सिर्फ कानून नहीं, संवेदना की भी जीत दर्ज़ की थी। वसुधा राय की संपत्ति, उनके साहित्यिक अधिकार और 'आश्रय' नाम की संस्था अब सिया के नाम थी। लेकिन सिया जानती थी-वास्तविक विरासत उसके नाम के आगे नहीं, उसके आत्मबोध के भीतर दर्ज हो चुकी थी।

आदित्य ने मुस्कुराकर उसकी ओर देखा, "तुम्हारे नाम के आगे अब 'राय' लग गया है। कैसा लगता है?" सिया ने उत्तर दिया,"मुझे तो लगता है जैसे दस्तख़त अब नाम पर नहीं, आत्मा पर हुआ है।"

उसी शाम 'वसुधा स्मृति व्याख्यानमाला' का उद्घाटन था, जहाँ साहित्यिक, सामाजिक और न्यायिक जगत के लोग जुटे थे। आदित्य को मंच पर बुलाया गया।

"हम अक्सर समझते हैं कि वसीयत वह होती है, जो किसी के मरने के बाद मिलती है। पर सच्ची वसीयत वह होती है, जो किसी के जीते जी हमारे भीतर बोई जाती है। सिया ने वसुधा जी की कहानियों को नहीं पढ़ा-उन्हें जिया है और इसीलिए वह उनकी असली वारिस है।"

सिया मंच पर आई। उसके हाथ में एक सफ़ेद डायरी थी-वसुधा जी की आख़िरी डायरी।

"इस डायरी का आख़िरी पन्ना खाली था," उसने कहा, "आज मैं उसमें पहला शब्द लिखने जा रही हूँ-अपने नाम से।"

उसने लिखा-"सिया राय - शब्दों की बेटी"

हॉल तालियों से गूँज उठा।

भीड़ के शोर के बीच आदित्य और सिया एक कोने में खड़े थे।

"तो अब कहानी खत्म?"आदित्य ने पूछा।

"नहीं," सिया बोली, "अब असली कहानी शुरू हुई है।"

"क्या नाम रखोगी इस नई किताब का?"

सिया ने मुस्कराकर कहा-"दस्तख़त"

'क्योंकि असली दस्तख़त वह नहीं होता जो काग़ज़ पर होता है... असली दस्तख़त आत्मा पर होता है।'

❋❋

वक्त से लंबी दोस्ती

* संदीप तोमर

बरामदे में पसरी चुप्पी असहनीय थी। धूप ढलकर पेड़ की शाखों से छनकर आ रही थी, पर जैसे घर के भीतर अंधेरा-ही-फैला हो। सामने खाट पर बैठा वीरेंद्र लगातार रोए जा रहा था। उसकी आँखें सूजकर लाल हो चुकी थीं और बार-बार हथेलियों से पोंछने पर भी आँसुओं की धारा रुक नहीं रही थी।

मुझे देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और बिना कुछ कहे मेरे गले लग गया। उसका शरीर काँप रहा था।

"यार अमित..." उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा, "पिताजी... पिताजी नहीं रहे... मेरी ही गोद में उन्होंने आखिरी साँस ली...। मैं डॉक्टर के पास दौड़ता रहा... पर कुछ कर न सका...।"

उसके शब्द मेरे सीने में तीर की तरह चुभे। मैं चुप रहा। ऐसी घड़ी में शब्द अक्सर बेकार लगते हैं। बस उसका काँपता हुआ कंधा पकड़कर मैं चुपचाप उसके साथ बैठ गया।

उसकी रुलाई ने मेरे भीतर की चुप्पी को तोड़ दिया। मैं शब्दहीन था, पर मन के भीतर कहीं पुरानी परतें खुलने लगीं। बचपन से अब तक की सारी यादें, सारे दृश्य आँखों के सामने तैरने लगे...।

वह हमारा गाँव था, जहाँ धूल भरी पगडंडियाँ, खेतों के किनारे खड़े पीपल और नीम के पेड़ और कच्ची सड़क पर गाय-भैंसों की घंटियाँ बजती रहतीं। गरमी की दोपहर में कुएँ से पानी खींचती औरतों की गुनगुनाहट और बरसात में पके आम की गंध- यही हमारी दुनिया थी।

हम दोनों- मैं, अमित और मेरा दोस्त वीरेंद्र - वहीं पले-बढ़े।

आँखों के सामने गाँव का स्कूल उभर आया। खपरैल की दीवारें, छत पर झूलता पंखा और हम दोनों एक ही बेंच पर बैठे। हमारे घरों में ज़मीन-आसमान का अंतर था। मैं अपेक्षाकृत संपन्न परिवार से था। मेरे पिता सरकारी नौकरी में थे और साथ में खेती भी। घर में हर नई चीज़ सबसे पहले आती। मुझे आज भी याद है, जब बैटरी वाला टीवी आया तो पूरा मोहल्ला हमारे घर जुट गया था। उसके बाद प्रेसर कुकर, गैस का चूल्हा... हर कोई कहता - "अमित के घर तो शहर जैसी सुविधाएँ हैं।"

लेकिन वीरेंद्र का घर बिलकुल अलग था। वह साधारण घर का बेटा था, उसके पिता भैंस का दूध बेचकर घर चलाते, माँ सिलाई का काम करतीं। घर की हालत तंग थी, लेकिन उनकी सादगी और मेहनत में एक गरिमा थी।

जन्म : *जून 1975*

जन्म स्थान : *खतौली (उत्तर प्रदेश)*

शिक्षा : *स्नातकोत्तर (गणित, समाजशास्त्र, भूगोल), एम.फिल्. (शिक्षा शास्त्र) पीएच.डी. शोधरत*

साहित्य : *4 कविता संग्रह, 4 उपन्यास, 3 कहानी संग्रह, एक लघुकथा संग्रह, एक आलेख संग्रह सहित आत्मकथा प्रकाशित।*

सम्मान : *राजेंद्र यादव हंस लघुकथा सम्मान 2025 से सम्मानित -हिंदी अकादमी मुंबई द्वारा साहित्य साधना सम्मान 2025*

सम्पर्क :
डी 2/1 जीवन पार्क, उत्तम नगर
नई दिल्ली 110059
मोबाइल : 8377875009

इन सब अंतर के बावजूद हमारी दोस्ती पर कभी असर नहीं पड़ा। बचपन से ही हम साथ पढ़ते, साथ खेलते। लालटेन की रोशनी में किताबें साझा करते। तब भी और आज भी, हमारी दोस्ती में किसी कमी का एहसास नहीं हुआ।

मुझे याद है - शाम को जब अँधेरा छाने लगता, तब हम लालटेन की पीली रोशनी में बैठकर पढ़ाई करते। अक्सर किताब मेरी होती, कॉपी उसकी। मैं गणित का कोई सवाल समझाता तो वह माथे पर शिकन डालकर कहता - "अरे भाई, तेरा दिमाग़ तो मशीन है, मैं कहाँ इतना सोच पाता हूँ।"

मैं हँसकर जवाब देता- "और तेरे दिल में इतनी जगह है कि पूरी दुनिया रख सकता है।"

हमारी यही साझेदारी- दिमाग़ और दिल की, हमारी दोस्ती की असली ताकत थी।

कभी मैं उसे अपने घर के टीवी पर फिल्म दिखाता तो वह अगले दिन अपने आम के पेड़ के कच्चे आम लेकर मेरे पास उपस्थित हो जाता- नमक, मिर्च मिलाकर बनाये गए चूरन के साथ, सेविंग ब्लेड से कच्चा आम काटकर खाते। हम दोनों के लिए ये आदान-प्रदान सिर्फ़ सामान का नहीं था, बल्कि भावनाओं का था।

हमारे गाँव का स्कूल छोटा-सा था। बरसात में उसके कोने और छत टपकते। वहाँ बैठकर हम दोनों बड़े सपने देखते थे - "एक दिन हम गाँव से निकलकर बड़े शहर में जाएंगे... और अपना नाम कमाएँगे।"

गाँव की गलियों से निकलकर जब हम कॉलेज पहुँचे तो हमें लगा जैसे कोई नई दुनिया खुल गई हो। कक्षा के बाहर चाय की दुकानों पर गपशप, कैंटीन में समोसे की महक, लड़कों का क्रिकेट और लड़कियों का झुंड - सब कुछ हमारे लिए नया और चमकदार था।

मैं पढ़ाई में हमेशा अच्छा रहा था। बारहवीं के बाद मैंने ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया था। गाँव के ही छोटे बच्चों को पढ़ाकर अपना जेब खर्च निकाल लेता। इससे मुझे एक आत्मनिर्भरता का एहसास होता- "अपना खर्च खुद उठाना।" उसी कमाये गए पैसे से मैं कैंटीन का बिल चुकता करता, उसका भी और अपना भी। जाहिद की पान की दूकान पर अक्सर हम शाम को मिलते, कभी पान का बीड़ा मुँह में होता तो कभी गोल्ड फ्लैक सिगरेट से धुआँ छोड़ते, मुंह से किसी को धुंए की गंध न आये तो चलते हुए चुटकी पान-मसाला मुंह में डाल लेते।

वीरेंद्र का दिमाग पढ़ाई में इतना तेज़ नहीं था। वह कोशिश बहुत करता, मगर सवालों में उलझ जाता। कई बार कहता- "अमित, तेरे लिए पढ़ाई खेल है, मेरे लिए पहाड़ चढ़ने जैसा और गणित में तो तेरा जवाब ही नहीं है।"

फिर भी वह हार मानने वालों में नहीं था। रोज़ मेरे साथ बैठता, अपनी कॉपी भरता और मेरी हिम्मत बढ़ाने वाली बातें सुनता।

कॉलेज का रंगीन माहौल हम दोनों पर अलग-अलग असर डाल रहा था। मैं पढ़ाई और ट्यूशन में व्यस्त हो गया, जबकि वीरेंद्र का मन एक लड़की की तरफ़ खिंच गया। वह अक्सर क्लास खत्म होते ही गाँव जाता तो उस लड़की के नुक्कड़ के पास खड़ा हो जाता, सिर्फ़ इसलिए कि वह लड़की वहाँ से गुज़रे या बाहर निकले तो उसके दर्शन हो जाएँ।

मैं उसे चिढ़ाते हुए कहता- "ओए वीरू! किताबों से ज्यादा तेरा दिल अब 'आँखों' को पढ़ने लगा है।"

वह शरमा जाता, लेकिन मुस्कुरा देता।

उस इश्क़ का असर यह हुआ कि पूरे साल उसकी पढ़ाई बिगड़ गई और जब नतीजे आए, तो वह फेल हो गया। यह हमारे जीवन का पहला बड़ा मोड़ था। हम अब अलग-अलग कक्षाओं में थे। क्लासें अलग, सहपाठी अलग... लेकिन हमारी दोस्ती में कोई दूरी नहीं आई। हम अब भी हर रोज़ मिलते, साइकिल पर घूमते, साथ खाते।

इसी दौरान एक हादसा हुआ। एक शाम हम दोनों साइकिल से बाज़ार से घर वापिस आ रहे थे। रास्ते में अचानक एक स्कूटर से टकरा गए। साइकिल का पहिया बुरी तरह टेढ़ा हो गया और हम दोनों ही गिर पड़े, मेरा घुटना छिल गया। वीरेंद्र को भी चोट आई, उसका नीचे का जबड़ा टेढ़ा हो गया।

जब यह खबर उसके घर पहुँची, तो उसके माता-पिता घबरा गए। उन्होंने साफ़ कहा-

"अब अमित के साथ ज्यादा घूमना-फिरना बंद कर। पढ़ाई लिखाई में ध्यान दे।"

मुझे यह सुनकर तकलीफ़ हुई। लगा, जैसे कोई दीवार खड़ी हो रही हो। लेकिन वीरेंद्र ने एक शाम मुझसे कहा- "अमित, लोग हमें अलग करने की कितनी भी कोशिश करें, हम अलग

नहीं होंगे। हम जाने किस मिट्टी के बने हैं यार... शायद वही जो मुश्किल में और मजबूत हो जाती है।"

उसके शब्द मेरे दिल में पत्थर की लकीर बन गए।

कॉलेज के दिन धीरे-धीरे बीतते गए। हम दोनों का भविष्य धुंधला था, पर दोस्ती हमारी आँखों का सबसे साफ़ आईना थी। कॉलेज की डिग्री पूरी होते-होते ज़िन्दगी का रास्ता दो भागों में बँट गया।

मैंने बी.एससी करने के बाद शिक्षक प्रशिक्षण लेना शुरू किया। मेरी राह साफ़ थी- पढ़ाई में अच्छा होने के कारण मुझे विश्वास था कि आगे बढ़ लूँगा। लेकिन वीरेंद्र के सामने विकल्प सीमित थे। एक दिन उसने कहा- "अमित, मैं महाराष्ट्र जा रहा हूँ। सुना है वहाँ अच्छे डिप्लोमा कोर्स होते हैं। शायद मेरी किस्मत वहीं खुल जाए।"

मैंने उसका चेहरा गौर से देखा। वह थोड़ा डरा हुआ था, थोड़ा उत्साहित भी। मैंने हँसकर कहा- "जगह चाहे महाराष्ट्र हो या मैक्सिको... तेरे लिए मेरी दोस्ती यहीं रहेगी।"

और सचमुच एक दिन वह महाराष्ट्र के पुणे शहर चला गया।

अब हमारी मुलाकातें चिट्ठियों तक सिमट गई। उस ज़माने में फोन सबके पास कहाँ होता था? तो हमारी दोस्ती का पुल इन पत्रों पर टिका था।

हर हफ्ते उसकी एक चिट्ठी आती। उसके खत में अक्सर लिखा होता- "अमित, यहाँ की भाषा समझ नहीं आती। लोग मराठी में बात करते हैं और मैं जैसे शब्दों के जंगल में खो जाता हूँ। लेकिन जब तेरी चिट्ठी आती है न, तो लगता है कि गाँव की हवा मेरे कमरे में उतर आई है।"

मैं जवाब देता- "वीरू, हिम्मत मत हार। भाषा दीवार नहीं, दरवाज़ा होती है। तू मेहनत करेगा, तो दरवाज़ा खुल ही जाएगा।"

वह भी कभी-कभी अपने पत्र में मज़ाक डाल देता- "तेरे बिना यहाँ बहुत सन्नाटा है। सोच रहा हूँ, तेरे नाम की गली खोल दूँ, ताकि तुझे रोज़ देख सकूँ।"

एक बार चिट्ठी में उसने लिखा- यार, यहाँ फर्गुशन कॉलेज की मेडिकल की लडकियाँ पूरे शहर की रौनक हैं, तू कभी इधर आ तो तुझे भी विश्व की सबसे सुन्दर लड़कियां दिखाता हूँ और एक बात- यहाँ के बारे में एक कहावत सब लड़कों में मशहूर है- पुणे शहर में निकलो तो दो तरह के छाता हमेशा साथ रखो, बारिश और फर्गुशन कॉलेज की लड़कियों में से कब कौन मेहरबान हो जाए, कुछ पता नहीं।"

चिट्ठियाँ सिर्फ़ शब्द नहीं थीं। वे हमारी सांसें थीं, हमारी दोस्ती की डोर थीं।

मुझे याद है- एक बार उसकी चिट्ठी आई जिसमें सिर्फ़ दो लाइनें थीं- "आज बहुत अकेला हूँ। तू यहाँ होता तो शायद इतना रोता न।"

उस दिन मुझे पहली बार महसूस हुआ कि दूरी कितनी बड़ी परीक्षा होती है। लेकिन हमारी दोस्ती ने यह इम्तिहान भी पास कर लिया। जिंदगी जैसे पटरियों पर दौड़ रही थी। डिप्लोमा पूरा करने के बाद वीरेंद्र दिल्ली आ गया और मैं भी अपनी ट्रेनिंग पूरी कर राजधानी पहुँच गया। देश की रफ्तार हमें अपने साथ खींच लाई थी।

दिल्ली में शुरूआत आसान नहीं थी। भीड़, ट्रैफ़िक, मकान-मालिक की सख्ती और जेब में तंगी- यह सब रोज़मर्रा की जद्दोजहद थी।

सबसे पहले नौकरी लगी वीरेंद्र की। उस दिन उसने मुझे फोन किया- "अमित! सोच, आज मैं पहली बार सूट पहनकर ऑफिस गया। लेकिन सच कहूँ, सूट से ज्यादा भारी लगा ज़िम्मेदारी का बोझ।"

मैंने उसे बधाई दी। मेरी भी सरकारी नौकरी लग गयी थी, एक ही कमरा किराए पर लिया हमने, जिसमें हमारे सपने और हम साथ-साथ रह रहे थे। लेकिन किस्मत ने उसके साथ जल्दी ही खेल खेला। कुछ ही महीनों में कंपनी ने छँटनी कर दी और उसकी नौकरी चली गई। अब उसके दिन बेरोजगारी के अंधेरे में डूब गए।

वह जब भी इंटरव्यू देने जाता, जेब खाली होती। कई बार उसने मुझसे उधार माँगने की हिम्मत नहीं की, मैं ही आगे बढ़कर उसका किराया, चाय-पानी, फॉर्म फीस के पैसे उसकी जेब में रख देता।

"अमित, पैसों की चिंता मत करना। जब मेरे पास काम होगा, मैं तुझे लौटा दूंगा।" - वह कहता।

लेकिन मैं हमेशा कहता - "वीरू, तू मेरा भाई है। भाई से हिसाब रखा जाता है क्या?"

हमारे बीच कभी कोई गिनती नहीं हुई। बस एक भरोसा था।

कई महीने यूँ ही गुज़रे। फिर एक दिन किस्मत ने करवट ली। उसे एक अच्छी कंपनी में नौकरी मिली। और वहाँ तरक्की इतनी तेज़ हुई कि

उसकी तनख्वाह देखते ही देखते मेरे से तीन गुना हो गई।

एक दिन हम दोनों किसी बार में बैठे थे। मैंने बिल चुकाने के लिए पर्स निकाला, लेकिन उसने रोक दिया– "नहीं यार, अब तू कभी बिल नहीं भरेगा।"

मैंने हँसकर कहा– "क्यों भाई? सरकार ने मेरी तनख्वाह बंद थोड़े कर दी है।"

वह बोला– "याद है न, जब मैं बेरोज़गार था, तूने हर बार मेरा बिल भरा। अब मेरी बारी है।"

उसकी हँसी में एक आत्मविश्वास था, लेकिन आँखों में वही पुराना अपनापन।

हमारे पेशे अलग थे– मैं सरकारी नौकरी में, वह निजी कंपनी में, लेकिन हमारी दोस्ती अब भी उतनी ही मजबूत थी।

अक्सर लोग पूछते– "तुम दोनों इतने अलग-अलग रास्तों पर चलकर भी साथ कैसे हो?"

मैं बस मुस्कुराकर जवाब देता– "क्योंकि हमारे बीच कभी हिसाब-किताब नहीं रहा... न पैसों का, न दिलों का।

जीवन अपनी तेज़ रफ्तार में चल रहा था। हमारी शादियाँ भी लगभग दस दिन के अंतर पर हुई। अब हमारे परिवार, बच्चे और ज़िम्मेदारियाँ बढ़ गई थीं, लेकिन दोस्ती का रंग फीका नहीं पड़ा। हम अक्सर मिलते– कभी चाय पर, कभी बार में।

हमारी एक आदत बन गई थी– बाहर जाने पर हर बार बिल की बहस। मैं पर्स निकालता, लेकिन वीरेंद्र रोक देता।

"नहीं यार अमित, अब ये मेरी जिम्मेदारी है।"

मैं हँसकर कहता– "अरे, सरकार ने मुझे अभी भी तनख्वाह देना थोड़े न बंद कर दिया है।"

वह ठहाका लगाता और कहता– "याद कर, जब मेरे पास कुछ नहीं था, तब तूने मेरा सब संभाला। अब मुझे मत रोक।"

वो पल, वो हँसी... आज भी मेरे कानों में गूंजती है। लेकिन जिंदगी हमेशा हँसी ही नहीं देती।

उस दिन मैं सरकारी काम के सिलसिले में व्यस्त था। फोन लगातार बज रहा था, लेकिन मैं कवरेज से बाहर था।

शाम को करीब तीन बजे कॉल जुड़ा। दूसरी तरफ वीरेंद्र था... उसकी आवाज़ काँप रही थी– "अमित... यार... पिता जी नहीं रहे।"

यह सुनते ही जैसे मेरे पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई। मैं घबराकर बोला– "मैं आता हूँ वीरू!"

लेकिन उसने धीमे स्वर में कहा– "दिन ढलने से पहले अंतिम संस्कार करना होता है... अब चलेगा तो तू तब तक नहीं पहुँच पाएगा।"

फोन कट गया। मैं देर तक सुनसान बैठा रहा। रात भर करवटें बदलता रहा, नींद आँखों से दूर थी। सुबह होते ही मैं गाँव के लिए निकल पड़ा। जब उसके घर पहुँचा तो वीरेंद्र की रुलाई थमी नहीं थी।

वह मुझे देखते ही गले लग गया और फूट-फूट कर रोने लगा।

"अमित... पिताजी ने मेरी गोद में अंतिम साँस ली। मैं उन्हें डॉक्टर के पास ले गया... इलाज कराया... जब ठीक होकर घर ला रहा था, रास्ते में फिर हालत बिगड़ गई। दौड़ते-भागते अस्पताल ले गया... लेकिन कुछ नहीं हो सका। कुछ भी नहीं...।"

उसकी आँखें लाल थीं। उसके स्वर में दर्द ही नहीं, अपराधबोध भी था– "यार, मैं उन्हें बचा नहीं पाया। मेरी गोद में ही... मेरी गोद में ही उन्होंने दम तोड़ दिया।"

मैं कुछ बोल नहीं पा रहा था। शब्द जैसे गले में अटक गए थे। मैंने बस उसका कंधा थाम लिया।

उस दिन पहली बार मैंने अपने सबसे मजबूत दोस्त को टूटा हुआ देखा। और पहली बार महसूस किया कि दोस्ती का असली अर्थ सिर्फ़ खुशियों में साथ होना नहीं, बल्कि दुःख की सबसे गहरी खाई में उतरकर भी एक-दूसरे का सहारा बनना है।

उसकी ग्लानि खत्म करने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं थे। लेकिन शायद कभी शब्दों की ज़रूरत भी नहीं होती... कभी-कभी दोस्ती का मौन ही सबसे बड़ी सांत्वना होता है।

समय की रफ्तार बहुत कुछ बदल देती है। बचपन के खेल, गाँव की गलियाँ, कॉलेज की क्लासें, बेरोज़गारी के दिन, दिल्ली की भीड़, बार के ठहाके और... वह अंतिम संस्कार– सब अब स्मृति बन चुके हैं।

लेकिन एक चीज़ है जो समय की धूल से कभी धुंधली नहीं हुई-हमारी दोस्ती।

लोग अक्सर पूछते हैं– "दोस्ती आखिर कितने दिनों तक निभती है? साल-दो साल? कॉलेज तक? नौकरी

तक?"

मैं बस मुस्कुरा देता हूँ और वीरेंद्र की आँखों को याद करता हूँ। वह आँखें जो कभी मासूम गरीबी से चमकती थीं... वह आँखें जो बेरोज़गारी में धुंधली पड़ गई थीं... वह आँखें जो तरक्की के बाद आत्मविश्वास से दमक उठीं... और वही आँखें जो पिता की मौत पर रोते-रोते लाल हो गई थीं।

इन आँखों ने मुझे सिखाया कि दोस्ती किसी हिसाब की मोहताज नहीं होती। न पैसे की, न वक्त की, न दूरी की। दोस्ती बस होती है- कभी हँसी में, कभी आँसुओं में, कभी चिट्ठियों में, कभी खामोशियों में।

आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो लगता है कि हम दोनों किसी अदृश्य धागे से बंधे रहे। चाहे हालात जैसे भी आएं- गरीबी हो या अमीरी, नौकरी हो या बेरोज़गारी, मिलन हो या बिछोह।

कभी मैंने उसके लिए बिल चुकाया...

कभी उसने मेरे लिए आँसू पोंछे।

कभी हमने साथ सपने देखे...

कभी साथ मिलकर सपनों के टूटने का दर्द भी जिया।

यही तो दोस्ती का असली अर्थ है।

और शायद, यही जीवन का भी।

❋❋

अविनाश भारती की ग़ज़लें

1.

नई पीढ़ियों को बताना ये भाई।
किसी का न होता ज़माना ये भाई।

दिलों से मोहब्बत कभी कम न होंगी,
भले अपना बदले ठिकाना ये भाई।

दरिंदो से कैसे बचे घर की बेटी,
उसे सबसे पहले सिखाना ये भाई।

हँसाने का तेरा तरीका अजब है,
बुरे वक्त में गुदगुदाना ये भाई।

चुभे दिल में कितना बताना है मुश्किल,
मदद करके तेरा जताना ये भाई।

ऐ 'अविनाश' मुझको भुला दे तू लेकिन,
रखेगा दिलों में ज़माना ये भाई।

2.

गर सच से यूँ प्यार न होता।
जीना भी दुश्वार न होता।

मनमानी सरकारें करतीं
मुखरित गर अख़बार न होता।

आँखें गर लाचार न होतीं
दिल मेरा बीमार न होता।

मिल जाता यदि साथ तुम्हारा
सूना यूँ संसार न होता।

कौन हिफ़ाजत करता गुल की
गर शाखों पे ख़ार न होता।

सम्पर्क :
ग्राम+पोस्ट - अहियापुर, प्रखण्ड - साहेबगंज
जिला - मुजफ्फरपुर (बिहार)- 843125
मो- 9931330923 E:avinash9889@gmail.com

❋❋

असुरक्षित

* राजा सिंह

जन्म : *दिसम्बर, कानपुर*

शिक्षा : *एम.एस-सी. (जंतु विज्ञानं)*

सृजन : *चार कथा संग्रह, तीन उपन्यास। रचनाएँ हंस, पाखी, कथादेश, कथाक्रम, कथाबिम्ब, कथासमय, बया, उद्‌भावना, परिकथा, निकट, इन्द्रप्रस्थ भारती, लमही आदि साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ में प्रकाशित।*

सम्मान-पुरस्कार :

1. मंजिल ग्रुप साहित्यिक मंच, दिल्ली द्वारा लाल बहादुर साहित्य रत्न सम्मान।

2. स्टोरी मिरर में लिटरेरी कर्नल।

सम्पर्क :

एम. 1285 सेक्टर-आई, एल.डी.

ए. कॉलोनी, आशियाना, कानपुर रोड,

लखनऊ-226012

मोबा. 9415200724

ईमेल - raja.singh1312@gmail.com

वह जा रही थी, मिसेस चावला। उन्हें वह देख रहा था। फिर उन्होंने सिर मोड़कर उसे देखा और मुस्कराने लगी।.... एक अजीब आश्वासन भरी मुस्कराहट, जिसे देखकर वह भयभीत-सा हो गया, जैसे कोई लुटकर फिर लुटने की आशंका से पीड़ित हो। उसके भीतर कोई चीज भरभराकर गिर गई थी। हर आदमी ऐश करना चाहता है, किन्तु आदर्शवाद से पीड़ित या छवि से ग्रसित व्यक्ति ? उसके दोनों किले ढह गए थे। वह एक ऐसी राहत थी जो पीड़ा देती थी।

सिद्धांत की बात पत्नी से नहीं करनी चाहिए। सैद्धांतिक चर्चा में प्रेम कम हो जाता है। पत्नी से संबंध सैद्धांतिक नहीं होने चाहिए। प्रेम में सिद्धांत नहीं होते। उसकी पत्नी ने माना था और कहा था कि तुम अकेले नहीं रह सकते। इसलिए जब भी वह मायके जाती थी, उसके साथ ही जाती थी और दो-चार दिन साथ रुककर लौट आती थी। उसकी पत्नी तनुजा एक सीधी-साधी, साफ-सुथरी, तीखे नाक-नक्श की गेहुवें रंग की इकहरे बदन की लड़की थी, जो बच्चे के जन्म के बाद स्त्री बन गई थी। परंतु, बच्चे से अलग वह एक सुंदर कमनीय लड़की ही थी।

एक दिन उसने पत्नी से कहा था, "मिसेस चावला अच्छी महिला हैं!"

तनुजा हंसने लगी, "सच?"

बहुत दिनों से वह अकेला नहीं रहा था। अकेले दिनों की एक अजीब-सी महक होती है। उसने विवाह से पहले वह सुख भोगा था। बंधन रहित जीवन। इधर करीब दो साल से वह अकेले रात नहीं गुजरी है। उसकी एक अजीब-सी तड़प-नशा और चाहत होती है। वह फिर से कुछ दिन पत्नी और बेटे की अनुपस्थिति में जीवन जीना जीना चाहता था। देखे कैसा होता है ?

"तनु ! तुम बहुत दिनों से मायके नहीं गई हो?"

"तो? उसने पूछा।"

"मिल आओ जाकर। क्या जाना? तुम्हारी अपेक्षा से ही फुरसत नहीं है। और फिर किट्टु की देखभाल, फुरसत कहाँ है?"

उसने आश्वस्त किया, अबकी वह उसे और बच्चे को कुछ दिनों के लिए छोड़कर वापस आ जाएगा ।

"रह लोगे अकेले? मेरे बगैर तकलीफ तो नहीं होगी?" इत्यादि सैकड़ों प्रश्न।

पर वहाँ जाकर वह अड़ गया। "अरे! मिस्टर जब छोड़ने ही आए हो तो छोड़ जाइये और नहीं तो एक-दो दिन बाद साथ ही लौट चलूँगी। किन्तु वह और

रुकने का बहाना तलाश कर रहा था, किन्तु स्पष्ट कहने से परहेज कर रहा था। खैर, बेमन से वह लौट आया था।

उसने खुद को विश्वास दिलाया कि अब सब कुछ नया-नया होगा, ना पत्नी, न बच्चा ना उनकी चिंता का बोझ।

कितना हल्का है वह! अकेला तो वैसे ही घूमता है। पर वह बात और होती है एक अंकुश पत्नी और बच्चे का दिल-दिमाग में छाया रहता है। यह बात सदैव रहती थी कि वे दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, देर-सबेर उसे उनके पास पहुंचना है! पर आज वैसा कुछ नहीं है, आज वह मनचाहे घर जा सकता है। शाम ढलने को आ रही है, वह बेफ़िक्र होना चाहता है घर जाने को लेकर, किन्तु घर का भूत सवार हो रहा है। आज अकेले 9 से 12 वाला पिक्चर शो देखना है। मगर अभी सिर्फ 7 बजे हैं।

वह माल में घुस जाता है टाइम पास हेतु। सोचा कुछ पसंद आ गया तो बिना टोका-टाकी के खरीद सकेगा... लेकिन वह ऐसा कुछ भी नहीं खरीद पाया जो पत्नी की अनुपस्थिति में खरीदना चाहता था।... काश कोई संगी साथी होता, किन्तु उसके साथ के सभी शादी-शुदा हैं और सभी अपने घर में होंगे ! ज्यादा से ज्यादा उनके घर में चाय-नाश्ता करके वापस आना होगा और यह कैफ़ियत भी देनी होगी कि भाभी जी को लेते आना चाहिए था। अकेले रहने की क्यों फितरत पैदा हुई, आदि-आदि।.... उसे लगा कि पत्नी की अनुपस्थिति में वह उसके और समीपतर होता जा रहा है।

क्यों फिर रहे हम रात गए, वापस घर चलते हैं। क्या ही बढ़िया माहौल होगा कुछ रचने का? एक बैठकी में ही सारी रचना पूर्ण होगी। हाँ... यह ठीक रहेगा, किन्तु रचना हेतु यह उलझन भरा माहौल ठीक करने के लिए, एक-दो पैग की दरकार होगी। रेस्टोरेंट में वह नमकीन और ऑमलेट के साथ तीन-चार पैग चढ़ा गया। ... वह घर तो जा रहा है, किन्तु घर जाकर क्या वह भूखा सोएगा? वह कुछ भी बनाना नहीं जानता, यदि हिम्मत की भी तो कर नहीं पाएगा फिर वह खाने की छुट्टी कर सकता है।... यह अकेलेपन की मौज नहीं होगी? वैव माल के कैफेटारिया में उसने अगड़म-बगड़म भकोसा, जो उसे कभी भी घर में मुहैया नहीं होते।... उसे फिर घर की याद आई।

अभी भी रात के 9 मुश्किल से हुए थे। उसने लेखन की चाह से विद्रोह किया और मल्टीप्लक्स में पिक्चर देखने चला गया। पिक्चर देखते हुए उसे अफसोस हुआ कि इतनी रोमांटिक पिक्चर उसे तनुजा के साथ देखनी चाहिए थी। उसे लगा पत्नी बगैर अकेले कुछ दिनों फ्री गुजारने का ख्याल बकवास में तबदील होता जा रहा है। उसे संकोच ने घेर लिया कि ऐसे एकाकी खुशनुमा माहौल में पत्नी भी होती तो... ?

उसने मन-मस्तिष्क से घर को बाहर करने हेतु सिर को झटका। उसे अकेलेपन का सुख भोगना है। तभी तो, अभी से क्या करना है घर जाकर? हजरतगंज की चमकती-दमकती दुकानों में स्याही पुती थी. इन बंद दुकानों, बरामदों में अकेले घूमने का क्या तुक है?.... कोई कहानी का प्लॉट मिल सकता है या प्लॉट की नायिका..., हेल्प....हेल्प का शोर मचाती। अचानक एक डर उसके भीतर घुस आया, कोई अराजक तत्त्व उसकी धनराशि को लूट न ले...!... लूट तो तब भी ठीक है। कहीं उसकी हत्या ना हो जाए? वह बहुत सत्ता विरोधी रचनाएं लिखा करता है...सत्ता का दलाल उसे जहन्नुम पहुँचा सकता है। वह सहमकर पुलिस जिप्सी के पास चला आया।

इन्स्पेक्टर ने धमकाया, 'कहाँ रात में टहलकदमी कर रहे हो, पत्रकार महोदय?' डर कर उसे पसीना आ गया। मिमियाता हुआ बोला, "पत्रकार नहीं लेखक हूँ, कहानी की तलाश में भटक रहा हूँ।" "कहानी क्या मिलेगी, कहीं खुद ना कहानी बन जाना?" फिर वे हो.. हो.. कर हँसने लगे। उसने चेहरे पर छलक आए पसीने को पोंछा और वापस घर लौट चला।

कैब से उतरकर वह अपने 505 नंबर फ्लैट में दाखिल हुआ तो उसका सिर भन्नाया हुआ था। नशा गहरा गया था और उतारने वाला कोई नहीं था। आज वह अकेला था चार कमरों वाले फ्लैट में-अकेला, जो चाहे करे। कोई शर्म, लिहाज इज्जत मान-मर्यादा की वकालत नहीं? उसने खिड़कियों के मोटे परदे ठीक से बंद किया और सारी लाइट जला दी- अब उसने आदमकद शीशे के सामने सारे कपड़े उतार दिए।

वह एकदम आदमजात नंगा था। वह अपना अंग-प्रत्यंग निहारने लगा। उसे लगा, अब भी उसका शरीर सौष्ठव मार्के का है। लेकिन कपड़े उतारते ही उसे ठंड लगने लगी. कुछ तो न्यूनतम कपड़े पहने ही पड़ेंगे, वरना बीमार पड़ जाएगा और पत्नी को आरोप रोपित करने को मिल जाएगा, "अकेले वह अपना ध्यान नहीं रख सकता। इसीलिए वह मायके नहीं जाती उसके बगैर। मैं जानती हूँ तुम अकेले अपने को ठीक से रख नहीं पाओगे। ना खाना, न पीना, ना पहनना किसी का शऊर नहीं है। इसलिए साथ जाती हूँ और साथ ही लौट आती हूँ।"

अचानक डोर बेल घनघना उठी। वह चिहुँक उठा। इस समय कौन? शायद सत्ताधारी दल का कोई गुर्गा पीछा करता आ गया होगा? अब क्या होगा, उसका कत्ल होगा? वह उससे कहेगा कि वह राजनीतिक विरोधी नहीं है, सिर्फ लेखक है। उसने घर की सारी बत्तियाँ बुझा दीं और ऊनी गाउन पहन कर थर-थर काँप रहा था। उसके चेहरे पर पसीने की झलक थी। उसने पसीने को पोंछना चाहा, किन्तु असफल रहा क्योंकि सर्दी का पसीना भीतर के डर का कारण था।

एक बार फिर घंटी बजी, इस बार देर तक बजती रही, जैसे किसी ने अंगुली रख कर हटाई नहीं थी। उसने सारे घर की सारी बत्तियाँ जला दी। यह घोषणा थी कि अगर उस पर हमला हुआ तो सबकी जानकारी में आएगा। वह अकेला था और सोने की तैयारी कर रहा था, किन्तु इस रहस्यमयी घंटी के बजते वह कुछ भी नहीं कर पाएगा। नींद में आना तो बहुत बड़ी बात है। वह अस्त-व्यस्त हो उठा।

उसने दरवाजा खोल दिया। उसकी पड़ोसिन 504 नंबर वाली मिसेस चावला थीं। गोरी-गोरी बच्चों से मुख वाली, भरे बदन की मालकिन, दो बच्चों की माँ होने बावजूद आकर्षक एवं खूबसूरत। वह उत्सुकता से उसे देख रही थीं। वह एक क्षण उन्हें देखता रहा। इस समय। वह सुन्न सन्नाटे के बीच खड़ी थीं और उसे आमंत्रित कर रही थीं। वह अजीब नज़रों से निहार रही थीं, जैसे कुछ पूछ रही हों।

वह भीतर आ गई थीं। तनुजा आ गई होगी, कहाँ है? उसने बाहर का दरवाजा बंद किया और उनके पीछे-पीछे चला आया। वह बेडरूम में दाखिल हुई और डबल बेड पर बेतरतीब बैठ गई। फिर वही रट...."तनुजा कहाँ है?" उसने बताया, "वह अभी नहीं आई है, मायके में है, एक हफ्ते बाद आएगी।" हालाँकि वह जानता था कि उसकी पत्नी अवश्य उसे बताकर ही गई होगी!

"तो आप अकेले हैं ?" उन्होंने उसे कामुक नज़रों से निहारा। उसका शरीर गरम हो रहा था।

"मेरे पतिदेव भी नहीं है। चेन्नई टूर पर गए है। बच्चे सो गए हैं। मैंने सोचा....!" ....फिर कुछ रुककर बोली, "नशे में आप बहुत प्यारे और मादक लगते हों।"

वह उसके बेड पर निश्चिंत होकर बैठी थीं जैसे कि उन्हीं का हो! वह उसकी पहल का इंतजार कर रही थीं। वह चाहती थीं कि वह उसे नोच-खाए भुक्खड़ की तरह। उनकी साड़ी उठ गई थी। ऊपरी चीजें और नीचे के हिस्से अनावृत हो रहे थे। मिसेस चावला हँसी, "मैं अच्छी नहीं लगती ?" उन्होंने बड़ी कामुकता से ऊपर-नीचे के हिस्से हिलाए। वह लाल सुर्ख हो रहा था। उसका शरीर अकड़ गया। रक्त सहसा तेजी से गरम होकर दौड़ने लगा। उसकी नसें चटकने लगी। मिसेस चावला ने उसे अपनी ओर खींच लिया । वह भरभरा कर उन्हीं पर गिर गया। फिर वह उनसे मिल गया। उसने उनका गरुर शांत कर दिया।

वह चंद दिनों की आजादी की चाहत में दूसरों की गुलामी के भँवर में फँस गया था।

उसने कहीं सुना या पढ़ा था- आरंभ में जब हृदय स्वार्थ-भावना से संकीर्ण रहता है तो मनुष्य केवल अपनी पत्नी, बच्चों कुछ मित्रों एवं संबंधियों से ही प्रेम करता है। अंततः सभी से प्रेम करना लक्ष्य होना चाहिए। किन्तु यह प्रेम नहीं, वासना थी।

आमने-सामने के फ्लैट होने के कारण और मिसेस चावला के अंतरंग व्यवहार के कारण दोनों परिवारों में निकटता थी। कभी-कभी वह ऐसी बातें उससे कर जाती थीं कि पत्नी तनिक हैरान होकर ताकती रह जाती थी। उनका कहना था कि आदर्शवादी निहायत मूर्ख होता है। जब उन्होंने कहा था, "मैं अकेली होती हूँ। मेरे पतिदेव ज्यादातर बिजनेस टूर में होते है। आते रहिएगा।" संदेह था कि यह बात उन्होंने

किसके लिए कही थी। पत्नी को उनकी बात असंगत लगी, किन्तु फिर उसे याद आया कि जो चीजें हमें अच्छी नहीं लगतीं, उनसे कतराकर निकल जाना चाहिए।

उसकी पत्नी शीघ्र ही लौट आई - जैसे कि वह उसका भेद जानती हो! वह उसकी आँखों में सीधा देखती है। वह उसे देख रही है या तौल रही है। वह तनता गया। वह उसकी सीधी आँखों से देख सके, उसका सही - सही सामना कर सके, यह सोचकर उसने दुबारा शब्दों को दोहरना चाहा किन्तु... वह कह सकने की हिम्मत न जुटा सका। पत्नी को वह बेहद चाहता था। वह चाहता था कि वह सब कह दे तो उसके मन मस्तिष्क को मथे जा रही थी - एक भूल। वह हताशा के परे चला गया था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि एक - आध दिन पहले घटित रहस्य को कैसे कहा जाए?

"तुम ऊब तो नहीं रही?" उसने अपनी पीड़ा के आलोक में उसे देखा।

"आप बहुत अच्छी हैं।" उसने उदासीन भाव से कहा

"आप बहुत अच्छा बोलते हैं।" लेकिन वह हँस नहीं रही थी।

वह कुछ देर तक उसे उलट - पुलट कर देखती रही। वह उसे देखना चाहती थी कि उस पर क्या प्रतिक्रिया होती है। वह उसे देख रही थी, जैसे कुछ फैसला ले रही हो और समझ न पा रही हो, यह सब क्या है?

वह चुप बैठा रहा।

तनु ने सिर उठाकर उसे देखा। आस - पास सन्नाटा था। वह उसे बेहद चाहती थी। कुछ कहना चाहती थी... करना चाहती थी... किन्तु - परंतु लेकिन में सब कुछ उलझ कर रह गई। वह अब सरकते हुए बिल्कुल पास आ गई इतने पास कि उसकी साँसे उसकी साँसों से टकराने लगीं। अचानक उसके सिर को अपने सीने से लगा लिया। किसी नरम आँच में सुलगता हुआ उसका बदन तप्त होने लगा।

वह कुछ हिचक रहा था, परंतु राजी था। वह बेहद उदासीन गम में था। बिना आँसू के पश्चात्ताप में डूब रहा था। उस क्षण भूख और निराशा के बावजूद मन में खीज या कटुता नहीं थी।

"सुनो।" उसने बहुत धीमे से कहा, "मैंने पीठ पीछे बहुत गलत किया है।"

"क्या?" तनुजा ने सिर निकाला और उसकी ओर देखा। वह उसे बिल्कुल नहीं समझ पाती है।... "तुमने कुछ कहा?" उसने अबूझ आँखों से उसे देखा।

किन्तु प्रारंभ करने से पूर्व ही वह रुक गया। एक ऐसा अवास्तविक तथ्य, जिसे उसने शेयर करने से मना कर दिया था। एक विपत्ति के आने से पहले ही वह बच गया।

उसने धीरे से उसके सिर को अपने में झुका लिया और सहलाने लगी। तनु ने उसके ओठों पर अपना मुँह रख दिया और पागलों की तरह चूमने लगी।

वह सिहरने लगा। एक गरम आहट उसके खून में बहने लगी। नहीं. .नहीं...नहीं... उसके भीतर से आवाज आई। उसने सच बोलने से तौबा कर ली।

दरवाजे पर घंटी घनघनाई और वे दोनों चौंक गए। पत्नी तनिक हैरान होकर हवा में ताकती रही। एक - दूसरे से अलग हो गए। वह भागती हुई दरवाजे के पास आई देखा।

"ओह, मिसेस चावला! हम आपके बारे में ही बात कर रहे थे।"

उन्होंने क्षण भर उसे भरपूर नयनों से निहारा और बातों में मशगूल हो गई। जब वह उसकी तरफ मुड़ी तो मुस्करा रही थी। एक बवंडर - सा उसके भीतर उठा - जैसे वह एक प्राइवेट किस्स की बीमारी है, जिससे उसे दूर रहना है। वह वापस लौटी तो उसे एक प्रवचन याद आया - "मनुष्य को चाहिए कि अपने मन की सहायता से अपना उद्धार करे और स्वयं को नीचे ना गिरने दे। यह मन जीव का मित्र भी है और शत्रु भी है।"

कुछ महीने ऐसे ही बीत गए। जाड़ों की शुरूआत में एक बार पत्नी को अपनी वजह से घर जाना पड़ा। उसकी भाभी बीमार थी। देखभाल हेतु उसका भाई आया और लिवा गया। यह अजीब विडंबना थी। पत्नी जब भी मायके जाती थी, मिसेस चावला को पहले से ही सूचित कर देती थी, "संकोची हैं, खाने - पीने का ध्यान रखिएगा।" किन्तु उसके भीतर वह मर गई थी।

उसे उसका यह अनुरोध अनुचित लगा। उसके चेहरे पर चिपका हुआ नपुंसक आक्रोश हास्यास्पद रूप से मुखरित हो उठा। एक अजीब - सा गुस्सा उसे असुरक्षित छोड़ जाने की वजह भीतर उमड़ने लगा। वह जानता था,

मिस्टर चावला आज भी घर पर नहीं हैं। सहसा उसे लगा कि उसका रक्त ठंडा पड़ता जा रहा है। वह काफी डर गया था। उसने पीनी शुरू कर दी।

पिछली रात वह पत्नी के साथ था। अब वह बहुत रात गये इंतज़ार करती रही। कहानी के काले जंगल में अटकी थी। फिर ध्यान भटक गया तब उसे अजीब लगा कि खालीपन का मतलब क्या है? उसे तनुजा से ईर्ष्या थी उसे लेकर। फिर भी वह हिचकिचा रही थी।

तभी सचमुच की आहट सुनाई थी। खटक से दरवाजा खुला और वह दिखाई दीं। वह कॉल बेल का ही इंतजार करता रहा। शायद उसकी पत्नी ने देखभाल के लिए फ्लैट की दूसरी चाबी उन्हें दी होगी! उनके दिखते ही उसके भीतर जो धुकधुकी शुरू हुई, वह थमने का नाम नहीं ले रही थी। जैसे दिल के भीतर दूसरा दिल धडक रहा हो, जिस पर उसका कोई बस न हो !

"सच कहती हूँ आप नशे में बेहद प्यारे लगते है। मेरे ख्याल से जो सचमुच अच्छा आदमी होता है, वह नशे में और अच्छा हो जाता है।" उसके पास आते उन्होंने बड़े मोहक अंदाज में कहा।

वह पूरे कमरे में चल रही थीं। हँसी अब भी उनके अधरों पर विराजमान थी, जिसका शोर रातों में उस तक आते-आते गमगीन और गहरा होकर छाने लगा था। वह आतंकित आँखों से उन्हें देखता रहा न सिर हिलाया ना आँखें मूँदी।

वह अब निश्चिंत-सी दिखती थी, हालाँकि चेहरे पर अधीरता थी।

वह उसका हाथ पकड़कर खींचना चाहती थी, किन्तु उसने पहले ही उसे ऊपर कर दी। उसकी तरफ से कोई प्रयास ना होते देख खुद उससे सटकर बैठ गई। धीरे से फुसफुसाई, "हम आपको अच्छे नहीं लगते?" फिर वह उससे लिपट गई।

उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ उसे एकटक ताकता रहा।

उन्होंने एक लंबी साँस ली और ताकिया खिसकाकर उसके पास लेट गई। उसे कुछ भी हिलता नहीं मालूम पड़ा।

वह कुछ बेचैन-सा दिख रहा था। एक अजीब-सा गुस्सा उसके भीतर उमड़ने लगा। उसने मिसेज चावला को देखा। वही चेहरा उसकी तरफ कुछ झुका हुआ.... उत्सुक, चिंताग्रस्त, एकाग्र।

वह उठ खड़ा हुआ। उसने मुट्ठियाँ भींची। जबड़े अकड़ाया। स्वयं को संयत किया और बोला, "माफ कीजिएगा, आप तब आया करें, जब तनुजा हो।"

मिसेज चावला ने बुरा-सा मुँह बनाया, जैसे कुनैन की गोली निगल ली हों। वह झटके से उठ खड़ी हुईं, जैसे अपमानित हुई हों बोलीं, "आपको नींद आ रही है शायद?" और पैर पटकते हुए अपने फ्लैट में समा गई।

❋❋

सूचनार्थ

'समकालीन अभिव्यक्ति' में समीक्षार्थ कृतियाँ आमंत्रित हैं। समीक्षार्थ कृतियाँ प्रेषित करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:

- समीक्षार्थ प्रेषित कृति का प्रकाशन प्रेषित करने की तिथि से दो वर्ष से अधिक समय पूर्व न हुआ हो।
- सामान्यत: अनूदित कृति की समीक्षा नहीं की जाएगी। यदि अनूदित कृति समीक्षार्थ भेजते हैं तो मूल कृति भी भेजें।
- प्रायोजित समीक्षा स्वीकार्य नहीं है। केवल समीक्षा न भेजें। समीक्षा के साथ कृति भी भेजें, तभी समीक्षा के प्रकाशन पर विचार किया जाएगा।
- समीक्षा न होने पर भी कृति वापस नहीं भेजी जाएगी।
- कृति की पावती की सूचना फोन/ई-मेल द्वारा दी जाएगी।

सत्यम्

* नवल किशोर भट्ट

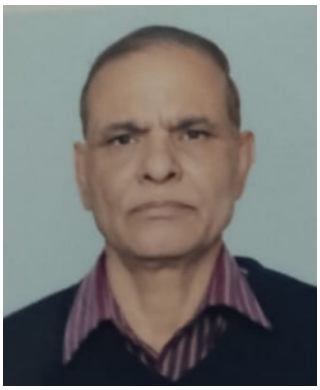

जन्म :
4 मार्च, 1964 (अल्मोडा, उत्तराखण्ड)

शिक्षा :
एम.ए. (अर्थ), बी-एड.

रचनाएं :
कहानी, कविता, ग़ज़ल आदि विधाओं में लेखन।

सम्प्रति :
अध्यापन से सेवानिवृत्त

सम्पर्क :
ए-455 दुर्गा विहार, नई दिल्ली-110080
मोब. 8700371405

सत्यम के हाथ फिर से निराशा लगी । इस बार भी उसका सेलेक्शन नहीं हो पाया। तीन-चार साल से वह लगातार कंपटीशन दे रहा था और रात-दिन पढ़ता रहता था। लेकिन हर बार उसे निराशा ही मिलती थी। कभी वह रिटन में फेल हो जाता था और कभी रिटन पास कर भी लेता तो इंटरव्यू में रह जाता था। इस नौकरी के चक्रव्यूह को वह भेद नहीं पा रहा था। कभी-कभी वह बहुत निराश हो जाता था और उस समय उसे अपने पिता पर काफी गुस्सा आता था। यदि उसके पिता को सच जीने की सनक न होती, तो वह भी आज सरकारी नौकरी में होता, बेशक वह प्राइमरी मास्टर ही होता पर होता तो। उसके पिता के अधिकांश दोस्तों ने अपने बेटों को नकल करवा कर अच्छे नंबर दिलवा दिए थे। इन्हीं अच्छे नंबरों की बदौलत वे मास्टरी की ट्रेनिंग में सलेक्ट हो गए और बाद में यही नंबर उनकी मास्टरी के सलेक्शन में काम आए, लेकिन उसके पिता तो सत्यवादी हरिश्चंद्र ठहरे। वह कैसे यह सब करते? लोगों ने उन्हें दुनियादारी समझाई और समय के साथ चलने के फायदे भी बताए पर उनकी सनक.. सच का साथ देने की सनक..... सत्यम ने धीरे-धीरे उनकी आस छोड़ दी थी पर अपने बलबूते भी वह कुछ नहीं कर पा रहा था।

सत्यम के पिता अगले साल रिटायर होने वाले थे। घर की स्थितियां ज्यादा सुखद नहीं थी। वैसे उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि घर में सब ठीक है या नहीं। इसे कुछ ऐसे भी समझा जा सकता था कि दोनों बेरोजगार लड़के उनकी चिंता में शामिल नहीं थे और न ही जर्जर मकान उनके लिए कोई समस्या थी। वह हर स्थिति में खुश रहना जानते थे। या यूं कहें कि उनके लिए अपने ढंग से जीना ही सबसे बड़ी बात थी। वह हर बात को सच की कसौटी पर कसकर ही निर्णय लेते थे। इसी सच को अपने उत्तराधिकारियो तक ले जाने के कारण ही उन्होंने अपने बड़े लड़के का नाम सत्यम और छोटे लड़के का नाम आनंद रखा था। उनका विचार था कि जहां सत्य होगा वहां आनंद होगा और जहां दोनों होंगे, वहाँ स्वर्ग होगा। वैसे उनके जीवन में सत्य ही सबसे बड़ा खलनायक सिद्ध हुआ था। उनके भाइयों ने उनकी पैतृक संपति हड़प कर ली और वह इस आस में बैठे रहे कि उन्हें सदबुद्धि आएगी, पर पैसा कुछ नहीं हुआ। उन्हें लगता था कि एक ना एक दिन उनके भाई सच को जरूर विजयी बनाएंगे, पर सच

पराजित हो गया। नौकरी में भी यही सच उनकी राह का रोड़ा बना रहा। वह हमेशा लांछित और हँसी का पात्र बने रहे। उनके साथ के लोग झूठ के बल पर प्रिंसिपल तक बन गए और वह आज भी प्राइमरी में ही हैं और वहीं से रिटायर होंगे। यह सारी बातें दूसरों की नजर से देखने पर मालूम होती थीं, उनकी नजर में तो उनके साथ सब कुछ अच्छा ही हो रहा था, क्योंकि उनके साथ सच था। कई बार लोगों को लगता था कि वह मनोविकार के शिकार हैं, नहीं तो थोड़ा झूठ और बेईमानी उनके जीवन को बदल सकती थी। पर जीवन में यह बदलाव उनके लिए महत्त्वहीन था । उनके लिए केवल एक चीज का महत्त्व था और वह था सत्य।

सत्यम ने अब अपना विचार बदल दिया था। पहले वह सरकारी नौकरी के पीछे पड़ा था। पर बार-बार की असफलता ने उसे प्राइवेट सेक्टर की तरफ मोड़ दिया। अब वह प्राइवेट सेक्टर में हाथ-पैर मारने लगा। फिर एक नया दौर शुरू हो गया, रिज्यूमे बनाना, इस कंपनी से उस कंपनी और इस ऑफिस से उस ऑफिस के चक्कर। आखिर, उसकी मेहनत रंग लाई और शहर की प्रतिष्ठित कंस्ट्रक्शन कंपनी 'पी.जी. कंस्ट्रक्शन' में वह अकाउंटेंट बन गया। उसके चयन में भी उसी सच की बड़ी भूमिका थी, जिसके खिलाफ उसने युद्ध छेड़ दिया था। उसने कसम खा ली थी कि वह सच के हमेशा खिलाफ रहेगा। सत्यम को अब अपने नाम से भी चिढ़ होने लगी थी। पर उसको बदलना उसके हाथ में नहीं था। यदि होता तो वह अपना नाम सबसे पहले बदलता। उसको इस बात का पता नहीं चल पाया कि जिस सत्य से उसे इतनी नफरत है, उसी सच के कारण उसे यह नौकरी मिली है। जिस कंस्ट्रक्शन कंपनी ने उसे नौकरी दी थी, उसका मालिक कभी उसके पिता का छात्र था। एक किराना दुकानदार का लड़का किस प्रकार आम से खास बन गया, इस पर चर्चा कभी फुर्सत में की जाएगी। यहां पर इतना ही समझना काफी है कि झूठ, धोखा, लफ्फाजी और बेईमानी ने उसे खरबपति बना दिया था। बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन, रोड़ी-बजरी के ठेके, मार्बल की खानें, नेशनल हाईवे के ठेके और न जाने कितने ही धंधों में उसने पैसा लगाया था। वैसे तो वह किसी को अपनी कंपनी में इतनी जल्दी लेता नहीं था, पूरी जांच-पड़ताल और संभ्रांत व्यक्तियों की रिकमेंडेशन के बाद ही उसकी कंपनी का कर्मचारी बना जा सकता था। उसके बिना ही उसने सत्यम को ले लिया और वह भी अकाउंटेंट के पद पर! यहां फिर से सत्यम के पिता खड़े थे। सत्यम के पिता का सारा जीवन सत्य की नींव पर खड़ा था। सत्य उनके जीवन से भी बड़ा था। यदि कभी जीवन और सत्य का चयन करना पड़ता तो वह सत्य का चुनाव करते। उनकी यही साख आज सत्यम के काम आई थी। ऐसे व्यक्ति का लड़का कभी गलत नहीं हो सकता, यही वह विश्वास था, जिसे कभी किसी रिकमेंडेशन और जांच-पड़ताल की जरूरत नहीं थी। सत्यम के पिता का जीवन सत्य को पूरी तरह परिभाषित करता था और यही सत्यम का सबसे बड़ा गवाह था।

सत्यम अब भविष्य को देख रहा था। पिताजी के सत्यवादी होने के कारण परिवार जिन समस्याओं से जूझ रहा था, उससे मुक्त होने की तीव्र इच्छा उसे बेचैन कर रही थी। उसने भविष्य की योजनाओं को अपनी डायरी में लिख लिया था। सबसे पहले वह अपनी पैतृक संपत्ति को हासिल करेगा। उसके बाद छोटे भाई की नौकरी और फिर घर का नवीनीकरण। उसके पिता भी पांच महीने बाद रिटायर होने वाले थे। उनके रिटायरमेंट से संबंधित कार्यों को भी उसने नोट कर लिया था। उसे पता था कि उनका जीपीएफ, ग्रेच्यूटी, लीव एनकैशमेंट आदि कार्यों को भी उसे ही निपटाना पड़ेगा। उसके पिता के संग रिटायर होने वाले सभी लोगों ने क्लर्कों को पहले ही इन कार्यों के लिए दस-दस हजार रुपए दे दिए थे। उनका सारा काम समय से हो जाएगा। पर सत्यवादी हरिश्चंद्र कैसे दस हजार रुपए दे देते। परसों ही वर्मा जी उसे सारी बातें समझा गये थे। वर्मा जी उसी के पिता के साथ रिटायर हो रहे थे। वह उसके पिता की इज्जत भी करते थे। लेकिन थे समझौतावादी। उन्हें सत्य के दुखों का पता था। कौन दुखों का वरण स्वेच्छा से करता है! केवल और केवल सत्यम की पिता ही इन दुखों को ईश्वर का आशीर्वाद मान रहे थे। यदि कभी कोई सत्यम के पिता को दुनियादारी समझाता तो वह सत्यवादी हरिश्चंद्र का उदाहरण देकर समझाते थे कि सत्य ईश्वर के

द्वारा ली गई परीक्षा है और इसमें पास होने पर फिर सुख-ही-सुख है। सत्य को कोई पराजित नहीं कर सकता। हमें धैर्य से सत्य की लड़ाई लड़नी चाहिए, विजय निश्चित है। वह सत्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं सुन सकते थे और ना ही सुनना चाहते थे। तीन-चार महीने में ही सत्यम सब काम सीख गया था। इसके साथ ही काले धंधे और काली कमाई का सच भी उसके सामने उद्घाटित होने लगा था। प्रतिमाह करोड़ों का कारोबार, टैक्स की चोरी, झूठे आंकड़ों का खेल धीरे-धीरे उसकी समझ में आने लगा था। वह भी इसमें सेंध लगाने की जुगत भिड़ाने लगा। इसका मौका भी अनायास उसके हाथ लग गया। हुआ यूं कि उस दिन चीफ अकाउंटेंट छुट्टी पर था और कंपनी का ठेकेदार उससे मिलने आया था। कंपनी के सभी लोग उसके रुतवे से परिचित थे और उसकी इज़्जत करते थे। उनकी कंस्ट्रक्शन कंपनी का अधिकांश काम उसी के द्वारा होता था। चीफ अकाउंटेंट के ऑफिस में न होने के कारण उसने अपने सारे बिल सत्यम को ही दे दिए। वह सत्यम से इन बिलों को अकाउंटेंट को देने की बात कहकर जाने लगा। तभी चपरासी सत्यम के लिए चाय लेकर आ गया। सत्यम ने वह चाय ठेकेदार को दी थी और अपने लिए चपरासी से और चाय लाने को कहा। ठेकेदार ने औपचारिकतावश चाय तो ले ली पर लग रहा था कि वह मजबूरी में ही यह कर रहा है। उसका चेहरा उसकी भावनाओं को छिपा नहीं पा रहा था। ठेकेदार या तो जल्दी में था या फिर वह सत्यम के साथ बैठने में अपनी तौहीन समझ रहा था। थोड़ी देर में सत्यम की चाय भी आ गई चाय थी। चाय की चुस्की के साथ ठेकेदार सत्यम से बातें करने लगा। सत्यम ने ठेकेदार के बारे में सुन रखा था। वह अपने छोटे भाई की नौकरी के लिए चिंतित था। बातों ही बातों में उसने अपने छोटे भाई की नौकरी के संदर्भ में ठेकेदार से बात करनी शुरू कर दी। उसका भाई सिविल इंजीनियरिंग में डिप्लोमाधारी था। दोनों काफी देर तक बात करते रहे। ठेकेदार ने सत्यम को अपना विजिटिंग कार्ड दे दिया और संडे के दिन अपने घर मिलने के लिए बुलाया। पता नहीं क्यों, अब ठेकेदार सत्यम में रुचि दिखाने लगा था।

सत्यम के पिता रिटायर हो चुके थे। उनका सारा पैसा उनको समय से मिल गया था। उन्हें लग रहा था कि सच देर में ही सही, अपना रंग दिखाने लगा है। उन्होंने मन ही मन अपनी पसंदीदा पंक्तियों को दोहराय 'सत्यम् एव जयते अमृत न सत्येन देवयानः पन्थाः विततः' फिर हमेशा की भांति बुदबुदाने लगे : 'सत्य की विजय होती है असत्य की नहीं' आखिर में हमेशा की तरह बोले - सत्यं वद धर्म चर : उनको लग रहा था कि बिना कुछ लिए-दिए ही उनका सारा पैसा केवल सत्य के बल पर मिला। सत्य की जीत पर उन्हें पूरा विश्वास था। लोगों को ही नहीं लगता था कि सत्य जीतेगा। वह उन्हें बार-बार समझाते थे कि बिना कुछ लिए-दिए कुछ नहीं होगा। वास्तव में लोगों की बात ही सच्ची थी। सत्यम को अपने पिता की परेशानियों का पता था। उसने उनके ऑफिस के क्लर्क को बारह हजार रुपए देकर उनके रिटायरमेंट संबंधित सारे काम करवा लिए थे। पिता सत्य की जीत का जश्न मना रहे थे और सत्यम!

सत्यम और ठेकेदार सोनी एक दो मुलाकातों के बाद ही घनिष्ठ मित्र हो गए थे। ठेकेदार सत्यम को मोहरा बनाकर कंपनी को चूना लगाना चाहता था तो सत्यम भी पैसा बनाना चाह रहा था। ठेकेदार ने धीरे-धीरे कंपनी को चूना लगाने का सारा प्लान सत्यम को समझा दिया। किस प्रकार फर्जी बिलों को पास करना है, यह बात सत्यम भी अब जान चुका था। दोनों एक नाव में सवार होकर कंपनी का बेड़ा गर्क करने लग गए। कंपनी सरकार और लोगों को ठग रही थी तो सत्यम और ठेकेदार कंपनी को ठगने लगे। झूठ बेईमानी और ठगी का यह मकड़जाल बड़ा अद्भुत था। ठेकेदार के पास धन बल के साथ ही जन बल भी था उसके गुंडे प्रतिद्वंदी ठेकेदारों को डराते धमकाते थे और जरूरत पड़ने पर मारपीट भी कर लेते थे। ठेकेदार के मजदूरों पर भी इनका आतंक था। ठेकेदार ने वकीलों की भी एक फौज तैयार कर रखी थी। जो उनके हर प्रकार की केस लड़तीऔर जीतती थी, धीरे-धीरे सत्यम को सारी बातें पता चलती गईं। अब वह अपनी पैतृक संपत्ति के विवाद को इन्हीं के माध्यम से हल करने का प्लान बनाने लगा। एक दिन उसने ठेकेदार को अपनी समस्या बता ही दी। ठेकेदार उस छोटी समस्या पर जोर से हंसा। जिस आदमी

ने करोड़ों की नामी बेनामी संपत्तियों का झगड़ा निपटा दिया हो, उसके लिए यह बहुत मामूली बात थी। उसने सत्यम को बताया कि वह दो-चार दिन में ही इसे सुलझा देगा। यह मानना तो पूरी तरह वैध था। बस उसके पिता के सीधेपन के कारण अटक रहा था। उसके पिता अपने भाइयों से किसी प्रकार का विवाद नहीं चाहते थे और उनके भाई बिना विवाद के कुछ देना नहीं चाहते थे। ठेकेदार ने वकीलों और गुंडों के दम पर यह मामला पांच सात दिनों में ही सुलझा लिया। सत्यम के दोनों ताऊ इस बात पर राजी हो गए कि वह बीस लाख रूपया देंगे और सत्यम के पिता पैतृक संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं लेंगे। यह रकम उन जमीनों के बाजार भाव से थोड़ी कम जरूर थी, जिन पर उन्होंने कब्जा कर रखा था, पर बिना कानूनी लड़ाई और झंझट के मिल रही थी। सत्यम ने अपने पिता को मना लिया और समझौता हो गया। पैतृक विवाद का मामला सुलझ जाने को सत्यम की पिता सत्य की जीत समझ रहे थे। सत्यम मन-ही-मन हँस रहा था। वह पिता को सच बताकर उनके सत्य के प्रति विश्वास को नहीं तोड़ना चाहता था।

दो-चार सालों में ही सत्यम ने काफी पैसा बना लिया था। कंपनी में भी उसने काफी ऊंचा स्थान हासिल कर लिया था। समय भी सत्यम पर मेहरबान था। कंपनी का पुराना दलाल जो अधिकारियों और नेताओं के बीच लेन-देन की सेटिंग करता था, अचानक हार्ट फेल होने से मर गया। वह मालिक का विश्वसनीय आदमी था। उसकी जगह अब सत्यम यह काम करने लगा था। इस काम के लिए मालिक को एक बेहद ईमानदार और विश्वसनीय आदमी चाहिए था। यहाँ भी सत्यम के पिता सत्यम के काम आए। पिता का सत्यवादी होना सत्यम के लिए वरदान साबित हो रहा था। कंपनी का मालिक सोचता था कि ऐसे संस्कारी पिता का पुत्र कभी गलत नहीं हो सकता। कंपनी मालिक के इसी विचार ने सत्यम को दलाल बना दिया।

इस काली दुनिया का एक नया अध्याय सत्यम के सामने खुल रहा था। करोड़ों की रिश्वत का लेन-देन, करोड़ों की टैक्स चोरी, करोड़ों की हेराफेरी, सत्यम को लगा कि उसकी मंजिल उसे मिल गई है। फिर एक दिन सत्यम वहां तक पहुँच गया-जहाँ केवल गिने-चुने लोग ही जा सकते थे। वह जगह थी नोटों का गोदाम! जहाँ अलमारियों, बक्सों और खुले में नोटों के बंडल भरे पड़े थे। वैसे तो यह कंपनी का गोदाम था, जहाँ सीमेंट, सरिया, संगमरमर, रोड़ी और कंस्ट्रक्शन की मशीनों और इसी तरह के सामान थे। काफी बड़े एरिया में बड़ी बिल्डिंग और उससे सटा एक मैदान, जहाँ यह सब था, उसी बिल्डिंग के तहखाने में था नोटों के गोदाम। कभी-कभी कंस्ट्रक्शन के ट्रकों में सीमेंट के कट्टों के नीचे नोटों से भरी बोरियों को लाया जाता था और तहखाने में रखा जाता था। कभी नोटों की बोरियों को भरकर इसी प्रकार बाहर ले जाया जाता था। करोड़ों का यह लेन-देन निर्बाध गति से चलता रहता था और सफेदपोशों के दागदार चेहरे झूठ में ढके रहते थे।

कंपनी की दलाली करते-करते सत्यम के लिंक बड़े-बड़े राजनेताओं और अधिकारियों से हो गये थे। उसने उनके माध्यम से अपने छोटे भाई को पीडब्ल्यूडी में भी लगवा दिया था। इसके लिए पैसों की व्यवस्था उसने कंपनी के खजाने से ही कर दी। बीस-पच्चीस लाख रुपए उसके लिए अब मामूली रकम थी। अब सत्यम अपने सभी लक्ष्य हासिल कर चुका था। उसने स्वयं लाखों की बेनामी संपत्ति खरीद ली थी। गोल्ड, शेयर बांड और म्यूचुअल फंडों में भी उसने अपना लाखों रुपया लगा रखा था। आज उसके पास सब कुछ था। अब वह पुराने मकान को तोड़कर नया मकान बनवा रहा था। उसके जीवन में अब आनंद ही आनंद था।

आज नये घर का गृहप्रवेश था। रिश्तेदारों और मेहमानों से घर भरा हुआ था। सत्यम मेहमान नवाजी में लगा था। ठेकेदार और कंपनी का मालिक भी कुछ देर के लिए उसके घर आए। आज सारा दिन सत्यम बहुत व्यस्त रहा। पूजा-पाठ, खाना-पीना और मेहमानों की विदाई के बाद सत्यम, उसके पिता और मां तथा छोटा भाई नई बैठक के कीमती सोफे पर बैठे थे। सत्यम के पिता सत्य की महिमा का गान कर रहे थे। सत्यम को छोड़कर सभी को

लगता था कि उसके पिता सही कह रहे हैं। सत्यम मन-ही-मन हँस रहा था। केवल और केवल सत्यम ही सत्य और असत्य के बीच के अंतर को जानता था। यह सारा काम, जिसे उसके पिता सत्य की जीत समझ रहे थे, वास्तव में झूठ, बेईमानी और ठगी की जीत थी। सत्य आज भी एक कोने में दुबका पड़ा था। पिता ने एक बार फिर 'सत्यमेव जयते..... सत्यमेव जयते...' का उद्घोष किया और उठ कर सोने के लिए जाने लगे। सत्यम ने भी मन ही मन उद्घोष किया...'सत्यम् दुखम्..... सत्यम् दुखम्..... झूठम् सुखम्..झूठम् सुगम्....' वह मन ही मन हँसने लगा। उसकी यह मुस्कुराहट उसके चेहरे पर उतर आई। वह आंखें बंद कर सोचने लगा। इसी सोचने के क्रम में उसके सामने उसके पिता खड़े हो गए। उसने आँखें खोल दीं उसे लगा कि उसके पिता उससे कह रहे हैं "बेटा, सत्यम् दुखम् नहीं हो सकत।" सत्यम सोचने लगा कि यदि उसके पिता का सत्य उसके पास नहीं होता तो क्या उसे कंस्ट्रक्शन कंपनी में नौकरी मिलती? यदि नहीं मिलती तो क्या यह सब जो आज उसके पास है, होता? यह सब उस सत्य की नींव पर ही खड़ा है, जिसे उसके पिता जीवन भर ढोते रहे हैं। तो क्या यह सत्य की ही जीत है? सत्यम अब उलझ गया था और तय नहीं कर पा रहा था कि सत्यम् दुखम्... या सत्यम् सुखम्।.....

❋❋

शालिनी खन्ना की ग़ज़ल

1.

आज बरसा खूब सावन हम भी जी भर रो लिए।
मन को करके आज पावन, दर्द सारे धो लिए।
थे पड़े कुछ बीज खुशियों के हमारे पास जो
हाथ लेकर आज आँगन, घर-दुआरे बो लिए।
थी नहीं नींदे नयन में आज से पहले कभी
छोड़ चिंता विगत-आगत, चैन से हम सो लिए।
सोच में लिपटे हुए थे गम उदासी रात-दिन
लो तुम्हें करते हैं वापस, हम उधारी जो लिए।
रंक-राजा देव-दानव, ना लगे कोई भला
प्यार से मुझको मिला जो, हम उसी के हो लिए।
अब कहाँ वह गर्मजोशी, अब कहाँ वो प्यार है
बस दिखावे के सबब में, खूब रिश्ते ढो लिए।।

2.

क्यूँ ये मन उदास रहता आजकल।
जाने किसके पास रहता आजकल ।।
खत्म होता जा रहा इंसान अब
बिन मरे ही लाश रहता आजकल ।
रंक-राजा ना कोई अब आम है
आपमें ही खास रहता आजकल ।
है नहीं उम्मीद अपनों से कोई
गैर का आभास रहता आजकल ।
ना समझ कमजोर-बलशाली कभी
कौन नृप या दास रहता आजकल ।
उत्सवों संग जब दिखावा जुड़ गया
है नहीं उल्लास रहता आजकल ।
हर कोई अपना हुआ करता था जब
वो जमाना काश! रहता आजकल ।

सम्पर्क :
गोविंदपुरी, दिल्ली
संपर्क : 9470385527
ईमेल : shalinikhannashalini@gmail.com

साथ चलो ना

उदास-सी शाम, टिप-टिप करती बूँदों की आवाज, अजीब-सी खामोशी, पत्थर की बेंच पर बैठी हुई अनिका ने पैर के अंगूठे से ज़मीन को कुरेदते हुए अबीर की ओर देखा। अबीर टकटकी लगाए डूबते हुए सूरज को निहार रहा था, मानो उस सूरज के साथ वो भी डूब जाना चाहता हो। अनिका निर्लिप्त है अबीर की भावनाओं से। अबीर के भीतर पसरता हुआ अंधकार उसे नज़र नहीं आ रहा है। अनिका को चाहिए एक सुरक्षित भविष्य, जो कि उसे अबीर के साथ दिखाई दिया था। अबीर को जीवन साथी के साथ एक प्रेमिका भी चाहिए थी, उसे लगा कुछ समय में वो प्रेम करने लगेगी अबीर को। अभी तो शादी में कई महीने हैं। एक दूसरे को समझने, जानने के लिए पर्याप्त वक्त है अभी।

ये छोटी-छोटी मुलाकातें एक दूसरे को करीब ला रही हैं और आपस में सामंजस्य बिठाने में मदद भी कर रही हैं। लेकिन अबीर को लग रहा है, जैसी जीवन साथी वो चाह रहा है, वैसी नहीं है अनिका। पंसद-नापसंद पर बात होती है दोनो में। भविष्य की प्लानिंग पर चर्चा करते हैं दोनों। परिवार के बीच सामंजस्य कैसे बनाएँगे, नौकरी और घर कैसे सम्हालेंगे एक साथ, सब बातों पर खुल कर बात करती है अनिका। लेकिन जैसे ही थोड़ा रोमांटिक होता है अबीर, वो असहज हो जाती है। ना कोई जवाब देती है ना किसी तरह की प्रतिक्रिया।

अबीर ने हिम्मत करके पूछा ये सोचते हुए कि आज आर या पार।

तुम हमारे भविष्य को लेकर बहुत आशान्वित हो, लेकिन ये बताओ कि क्या जीवन में बस जिम्मेदारियाँ, एक-दूसरे के प्रति दायित्व निभाना और साथ रहना ही शादी है? प्यार, रोमांस के लिए कोई जगह नहीं है तुम्हारे भीतर?

अनिका को एक अनजाना-सा डर सताने लगा। जिस सवाल से वो भागती रही है हमेशा, वही सामने खड़ा है आज। "नहीं ऐसा नहीं है। शायद मैं तुमसे खुलकर बात कर सकती हूँ। मैंने अपने घर में मम्मी-पापा को ऐसे ही देखा है हमेशा, बस सारी जिम्मेदारियों का निर्वाह करते, मशीन की तरह सारा जीवन चलते हुए। उनके बीच प्यार जैसी कोई चीज़ है या नहीं, मुझे आज तक समझ नहीं आया। विवाह के बाद ऐसे ही जिया जाता होगा, मुझे लगता था। शायद इसीलिए मैं ऐसी हूँ।"

"हाँ! उस समय में बिना सहमति के विवाह हुआ करते थे। ना परिचय, ना बातचीत, बस परिवार ने रिश्ता तय किया और बँध गए बंधन में। किसी के बीच प्यार पनप गया तो कोई सारा जीवन यूँ ही कोल्हू के बैल की तरह साथ घूमते रहे बिना कुछ सोचे। लेकिन आज तो ऐसा नहीं है ना! हम इतनी बार मिल चुके हैं, अगर तुम्हें लगता है की हमारा भविष्य भी तुम्हारे माता-पिता जैसा होगा तो हमें आज ही यहीं रुक जाना चाहिए।" अबीर ने मन कड़ा करके कहा।

भय की एक छाया अनिका के चेहरे से होकर गुजर गई। ढलती हुई साँझ अपने साथ अंधेरा लेकर आ रही थी। उसे लगा, उसका निर्णय उसके जीवन को या तो इस अंधकार में मिला देगा या फ़िर कल सुबह के उगते हुए सूरज के साथ रोशन करेगा।

"मैं कोशिश करूँगी कि उस अवसाद से बाहर आ सकूँ, अगर तुम मेरा साथ दोगे तो। इतने सालों जो देखा-सुना और सीखा है, उससे अलग तभी कुछ कर पाऊँगी, अगर तुम हाथ थामकर चलाओगे मुझे।" अनिका का स्वर भीगा हुआ था। बेमेल शादी की कड़वाहट के दंश को अपने जीवन में नहीं उतरने देना चाहती थी वो।

बादलों से भरे हुए आसमान में पलभर के लिए चाँद निकला और आसपास रोशनी बिखर गई। अबीर ने धीरे से अनिका का हाथ अपने हाथ में ले लिया। अनिका ने भविष्य के लिए निश्चिंत होकर अबीर के हाथ को कसकर थाम लिया।

- संजय मृदुल
भरतकुटीर भावना नगर,
चिल्फी हाइट्स के पास रायपुर,
छत्तीसगढ़ - 492004

❋❋

भाषा की मर्यादा

* हरिशंकर राढ़ी

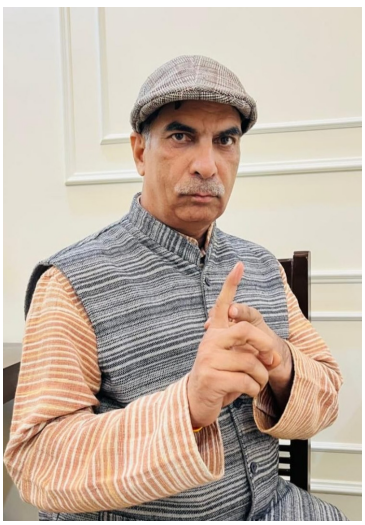

टीवी-नवीस अपने गले की नसों में अधिकतम हवा भरकर हल्कान होते हुए इस बात की घोषणा कर रहा था कि लोग भाषा की मर्यादा तोड़ रहे हैं, खासकर बड़े पदों पर बैठे नेता। ऐसा लग रहा था कि टूटने का धमाका केवल उसे सुनाई दिया हो। टीवी वालों का हर बात पर रोष करना धर्मसम्मत होता है। उन्हें निंदा या स्तुति करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। दूसरों को सीख देने का आजीवन लाइसेंस है, न देना कर्तव्य में कोताही है। सरकारी भाषा में कहें तो डेरेलिक्शन ऑफ ड्यूटी। इसलिए यह बताना जरूरी था कि बोला कैसे जाता है। यह बताने के लिए गले की नसों का फूलना, मुखमंडल पर क्षोभ, क्रोध और प्रतिशोध का भाव दिखाना जरूरी होता है। मामला भाषा की मर्यादा के उल्लंघन का हो, तब तो बहुत जरूरी। किसी को मर्यादा का पाठ पढ़ाना हो तो अपनी मर्यादा तोड़ना सर्वोत्तम उपाय है। लोहे को लोहे से ही काटा जा सकता है, बर्फ से नहीं।

सुना है इन दिनों भाषा की मर्यादा सच में टूटी है। टूटने के लिए एकमात्र यही चीज बची थी, वह भी टूट गई। पहले विश्वास टूटा, सपने टूटे, दिल टूटा, परिवार टूटा, रिश्ते टूटे, फिर तरह-तरह की मर्यादाएँ टूटने लगीं। शालीनता की मर्यादा, और अब भाषा की मर्यादा भी टूट रही है। जब सत्ता, धन और ज्ञान के उच्च और सर्वोच्च शिखर पर बैठे पहलवान मिलकर जोर लगाएँगे तो टूटेगी ही। वैसे भी भाषा बेचारी में दम ही कितना है? दम उसके लिए है, जो इसे समझता है। समझता भी वही है, जिसके दिल से निकलती है, दर्द से निकलती है। जिनके लिए दिल और दर्द दलाली है, उनके लिए क्या भाषा, क्या भाषा की मर्यादा! मर्यादा का पालन करने वाले इतना शीर्ष तक पहुँचते ही कहाँ हैं?

कभी वह जमाना रहा होगा, जब भाषा भावों के संप्रेषण का माध्यम थी। अब वह भौकाल और भाव मारने का माध्यम है। भौकालियों का एक हथियार भाषा भी है, वे इसे चलाना जानते हैं। युगों-युगों से ज्ञानियों ने समझाया था कि मन, वचन और कर्म में समानता होनी चाहिए। मुख में राम बगल में छुरी नहीं चलेगी। छुरी बिना वे नहीं चल पाएँगे, इसलिए एक छुरी मुख में भी रख ली है। मन में तो जन्मजात छुरा था। उस छुरे को कुछ लोग भाषा की म्यान में छुपाकर चलते थे। मन में अश्लीलता और वचन में श्लीलता को सभ्यता कहते हैं। ये सभ्यता नहीं, अच्छे लोग हैं। जो मन में था, वही जुबान पर आ गया है। जो छुरी मन में और बगल में है, वही अब मुख में भी है। अब आप उन पर पाखंडी होने का

आरोप कैसे लगाएँगे? अब तो उनकी मारक क्षमता दुगुना हो गई है।

समझदार और सफलोन्मुख व्यक्ति जानता है कि बिना कुछ तोड़े कम समय में आगे नहीं बढ़ा जा सकता। जगह-जगह, तरह-तरह की बैरिकेडिंग लगी हुई हैं, उन्हें हटाने से ही आगे का पथ प्रशस्त होगा। वर्जनाओं के टूटन का समय उत्थान पर है। भाषा की वर्जना क्यों बची रहे? भाषा-बोली कोई भी हो, हिन्दी, अंगरेजी, भोजपुरी, अवधी, ब्रजभाषा, बुंदेली, शारीरिक या सांकेतिक, उसकी मर्यादा तोड़नी है। कुछ भाषाओं और बोलियों में तो फूहड़तम और अश्लीलतम गीत गानेवाले व भाषण देने वाले तो चुनकर लोकतंत्र के गर्भगृह में पहुँच गए और सदम में विराज रहे हैं। अगर वे भाषा की मर्यादा नहीं तोड़ते तो आज बिरादरी की दरी पर भी बैठने के लिए नहीं पूछे जाते। चिंता वह करे, जिसका टूटा हो। उसे पता है कि मर्यादा कहाँ-कहाँ और कितनी टूटी है तथा कितना दर्द हो रहा है। भाषा की मर्यादा की चिंता वे करें, जिन्होंने इसे बनाया। इसकी चिंता वैयाकरण, लेखक और विद्वान करें और करके कलम घिसते रहें। जिन्हें मर्यादाभंग से ही सत्ता में परमपद प्राप्त हुआ है, वे चिंता क्यों करें? अभी तो सिर्फ तोड़ा है, चूर-चूर करना बाकी ही रह गया है।

वैसे यह आरोप गलत है कि भाषा की मर्यादा टूट रही है। सच्चाई यह है कि भाषा सरल और बेबाक हो रही है। वे लोग उसमें ऐसा पुट डाल रहे हैं कि वह आनंददायक हो सके और सच बयान कर सके। उसका स्वरूप ऐसा हो कि गुंडे-मवाली, टुल्ले-ठुल्ले और लुच्चे-लफंगे भी आसानी से समझ सकें। आखिर हमारी जनसंख्या में बहुसंख्या तो उन्हीं की है। उन्हें लगे कि वे जिसको चुनाव जिताकर भेज रहे हैं, वह ठीक उनके जैसा ही है। सदन छोटा हो या बड़ा, वहाँ पहुँचकर भी वह बदला नहीं है। दुख इतना ही है कि वह सत्ता में पहुँच गया, मैं यहीं रह गया। क्या करें, किस्मत-किस्मत की बात है।

दूसरे, भाषा में रस होना चाहिए। मर्यादा के रहते रस का आनंद नहीं आता। वैसे भी मर्यादा का स्वभाव ऐसा है कि वह जिसमें भी होती है, उसमें रसानंद रहने ही नहीं देती। बिलकुल सूखा करके छोड़ती है। मर्यादा वाली भाषा वक्ता-श्रोता को कभी चैन-आनंद नहीं पहुँचाती। संस्कृत को ही देख लीजिए, बहुत मर्यादा की बात करती थी, खत्म हो गई या नहीं? मर्यादा के नाम पर उसने अश्लील से अश्लील शब्दों को भी श्लील की श्रेणी में डाल दिया था। उनका प्रयोग कैसे भी कर लो, गाली बनती ही नहीं थी। बन भी जाए तो सुनने वाले को न तो आनंद आए और न गुस्सा ही। ऐसी मर्यादा का क्या लाभ, जिससे संप्रेषणीयता ही बाधित हो जाए?

भाषा में आनंद एवं मौलिकता तब तक नहीं प्राप्य हैं, जब तक उसे यौनिकता से न जोड़ा जाए। माननीयों ने अब जाकर यह काम करने का बीड़ा उठाया है। जो काम मनीषी नहीं कर पाते, वह काम माननीय कर दिखाते हैं। भाषा में यौनिकता का अर्थबोध सबसे अधिक प्रभावी होता है। मर्यादा फिर भी रखनी हो तो इसे दूसरे तरीके से कह सकते हैं। नवभाषाविद् ऐसा कर रहे हैं। वे किसी के बाप बन जा रह हैं तो किसी की माँ याद कर रहे हैं। कोई सूचित करता है कि दिल्ली किसी के बाप की नहीं है तो कोई घोषित करता है कि देश किसी के बाप का नहीं है। जितना प्रभावी बाप होता है, उतना पिताजी नहीं। इसी से समझा जा सकता है कि मर्यादित शब्द कितना कमजोर होता है। कोई खुद को किसी का बाप घोषित कर देता है। न जाने कितने लोग उम्मीद लगाकर बैठे थे कि इनमें से कोई पिताजी की भूमिका में आएगा तो हमारे भी भाग्य खुलेंगे।

इधर तो ऐसे टैलेंटेड प्रकृतिवादी आए हैं कि बच्चे को बचपन में ही उसके जन्म का कारण बताने लगे हैं। अब किसी बाप या माँ को छोटे बच्चे से यह झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं रहेगी कि बच्चा भगवान देता है। पूरा सच तभी सामने आता है, जब भाषा वर्जनाओं को तोड़कर बाहर निकलती है। वे शीर्ष पर हैं, लोकप्रिय हैं, यदि इन वर्जनाओं को तोड़कर सच्चे समाज का निर्माण करना चाहते हैं तो आप मर्यादा टूटने का रोना क्यों रोने लगे? मर्यादा तो बनी ही है टूटने के लिए! और मर्यादा वही होती है, जो सामर्थ्यवान करे।

❋❋

साहित्य का सुपरहिट शो मैन

* फारूक आफरीदी

जन्म : 24 दिसंबर 1952 को जोधपुर।

शिक्षा : हिन्दी साहित्य में एम.ए और पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा।

कृतित्व : 'मीनमेख', 'बुद्धि का बफर स्टॉक', 'धन्य है आम आदमी' और 'फारूक आफरीदी की चयनित व्यंग्य रचनाएँ' (व्यंग्य)। 'शब्द कभी बांझ नहीं होते' (कविता संग्रह), राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा 'गांधीजी और आधी दुनिया' पुस्तक, प्रौढों के लिए कहानी 'हम सब एक हैं'।

पुरस्कार और सम्मान :
गौरव सम्मान एवं श्रीगोपाल पुरोहित साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान,'

सम्पर्क :
राज विला, बी-70, प्रथम फ्लोर, प्रगति पथ, बजाज नगर, जयपुर-302015
मोबाइल- 94143 35772

कहते हैं, कला अमर होती है,लेकिन आजकल कला की उम्र उतनी ही है, जितने दिन तक बैनर लगे रहते हैं। कहानी, कविता या उपन्यास नहीं बिकते। बिकती है तो सिर्फ ब्रांडिंग और इसी ब्रांडिंग के युग में जन्म हुआ हमारे नायक हरियाली प्रसाद हीरक का। हरियाली प्रसाद को पहले किसी ने साहित्यकार के रूप में नहीं जाना। वे एक शांत स्वभाव के सरकारी कर्मचारी थे, जो फाइलों के बीच में 'दर्द' और 'आशा' जैसे शब्द खोज लिया करते थे। शाम को लौटकर फेसबुक पर स्टेटस डाल देते- "आज फिर एक कविता दिल के भीतर कसमसाई, पर बायोमेट्रिक मशीन ने उसे जन्म नहीं लेने दिया।" लाइक मिलते 3, कमेंट 1- "वाह सर!" बस, वही कमेंट उनका ऑक्सीजन टैंक बन जाता था। धीरे-धीरे उनमें यह यक़ीन जमने लगा कि अगर कविता पर दो लोग 'वाह' लिख सकते हैं तो किताब पर दो हज़ार लोग क्यों नहीं? बस, यहीं से शुरू हुआ साहित्य के सबसे चमकदार 'ब्रांड अवतार' का सफर।

एक दिन हरियाली प्रसाद हीरक ने टीवी पर खबर देखी - "दो करोड़ की फिल्म, चार करोड़ की पब्लिसिटी और सौ करोड़ की कमाई!" वे सोच में पड़ गए- "जब दो घंटे की नकली कहानी पर लोग नोट लुटा सकते हैं तो मेरी 200 पन्नों की सच्ची पीड़ा पर क्यों नहीं?" उनके भीतर का मार्केटिंग-गुरु जाग गया। उन्होंने नल का पानी बंद किया, फाइलें बंद कीं और साहित्यिक व्यापार की फाइल खोल ली। वे बोले - "जब मामूली कुकर 'तीन सीटी में खाना' कहकर करोड़ों बेच सकता है तो मैं 'तीन पन्ने में आत्मा का झरना' कहकर क्यों नहीं बिक सकता?" बस, उसी दिन उन्होंने ठान लिया कि अब वे लिखेंगे नहीं, लॉन्च होंगे। उनका असली नाम था- हरिप्रसाद गुप्ता, पर यह नाम साहित्य में बहुत साधारण था। किसी प्रकाशक ने समझाया- "साहब, नाम में दम होना चाहिए। कुछ हरा-भरा रखिए। हरियाली में ताजगी है और हीरक में चमक।" बस, उसी दिन से 'हरिप्रसाद गुप्ता' का देहांत हुआ और 'हरियाली प्रसाद हीरक' का जन्म हुआ। उन्होंने विजिटिंग कार्ड बनवाए- 'हरियाली प्रसाद हीरक- शब्दों का सुपरहिट जादूगर।' कार्ड के पीछे लिखा था - "किताब पढ़िए या मत पढ़िए, नाम याद रखिए।" जब किताब पूरी हुई तो पहले उन्होंने लेखन-गुणवत्ता नहीं, लॉन्च-वातावरण तय किया। वे बोले- "साहित्य का मान बढ़ाना है, इसलिए कार्यक्रम पाँच सितारा होटल में ही होगा।" साहित्यिक सहयोगियों ने समझाया- "भाई, इतना खर्च क्यों? किताब तो 10 हज़ार में छपी है।" वे मुस्कुराए- "भाई,

आजकल लोग किताब नहीं, कवर्ड फोटो खरीदते हैं।" लॉन्च का आयोजन किसी फिल्म प्रीमियर से कम नहीं था। फूलों से सजा मंच। बैकड्रॉप पर दस गुणा बीस फुट का पोस्टर– "हरियाली का तूफ़ान!" और मुख्य अतिथि– एक नामधारी लेखक, जिन्हें वे 'साहित्य के अमिताभ बच्चन' कहते थे। वे साहब विमान से लाए गए और पाँच हज़ार के लिफ़ाफ़े के साथ मंच पर बिठाए गए। उनके आते ही मीडिया के कैमरे झिलमिलाए और 'बुक लॉन्च' से पहले 'बुक सेल्फ़ी' शुरू हो गई।

मंच पर हरियाली प्रसाद ने कहा – "दोस्तो, आज से साहित्य का नया अध्याय शुरू होता है– जिसे पढ़ने से पहले प्रचार करना ज़रूरी है।" अगले दिन शहर के चौराहों पर पोस्टर लटक गए– "पढ़िए– 'हरियाली की आत्मकथा'– वो किताब जो जीवन बदल दे!" टीवी चौनलों पर विज्ञापन चला– "यह किताब नहीं, अनुभव है। जो एक बार पढ़े, वह फिर कभी लाइब्रेरी कार्ड नहीं छोड़ेगा!" यह जानकर मोहल्ले के लेखक चौंक गए। किसी ने कहा– "भाई, इतनी पब्लिसिटी तो नोबेल वालों की नहीं होती।" दूसरा बोला– "अब साहित्य का नहीं, स्लोगन का युग है।" हरियाली प्रसाद के हाथ में अब कलम नहीं, कैलेंडर था। हर इंटरव्यू, हर चैनल, हर ब्लॉग में वही पंक्ति दोहराते– "लेखन नहीं, लॉन्चिंग ही असली रचनात्मकता है।" जब किताब बाज़ार में पहुँची तो पाठक ने पूछा– "अंदर क्या है?" दुकानदार बोला– "सर, ये मत पूछिए, बाहर क्या है, देखिए!" कवर पर हीरक मुस्कुरा रहे थे सोने के चश्मे में, नीचे लिखा था– "लेखक जिनके शब्दों ने हजारों की नींद उड़ा दी।"

पाठकों ने सोचा,"चलो, देख ही लेते हैं।" तीन दिन में पहली एडिशन खत्म। चौथे दिन 'रीप्रिंट ऑन डिमांड'। पाँचवें दिन से 'सेल्फी विद हीरक' ट्रेंड में। अब आलोचकों का ध्यान गया। किसी ने लिखा– "किताब में विचार कम, वैभव अधिक है।" दूसरे ने लिखा – "यह साहित्य नहीं, सेल्समैनशिप का स्याही संस्करण है।" हीरक ने जवाब दिया– "साहित्य वही है जो बिके, बाकी तो हस्तलेख हैं।"

शहर के पुराने लेखक भौचक्के थे। जो लोग बरसों से गंभीर कविताएँ लिख रहे थे, वे अब सोच में थे– "हम तो काग़ज़ पर आँसू गिराते रहे और ये आदमी बैनर पर मुस्कुरा गया।" एक ने कहा– "भाई, उसने पब्लिसिटी में चार लाख लगाए।" दूसरे ने जोड़ा– "और रॉयल्टी में बीस हज़ार पाए।" तीसरे ने ताना मारा– "यह साहित्य नहीं, इवेंट मैनेजमेंट है।" पर जनता ने ठान लिया– "जहाँ भीड़, वही बेस्टसेलर!" अब हरियाली प्रसाद हीरक साहित्यिक मंचों के स्थायी मुख्य अतिथि बन चुके थे। कविता–सम्मेलन में उन्हें 'मंच शृंगार' के लिए बुलाया जाता। वे पहुँचते, मुस्कुराते और माइक पर बोलते – "मैं आजकल लिखता कम हूँ, प्रमोट ज्यादा करता हूँ।" पंक्ति सुनकर तालियाँ बजतीं, जैसे उन्होंने कोई नया दर्शन दिया हो।

धीरे–धीरे उन्हें पुरस्कार भी मिलने लगे–पहले 'नगर बेस्ट सेलर सम्मान', फिर 'राज्य स्तरीय रचनात्मक उद्यमी अवार्ड' और आख़िर में 'राष्ट्रीय विपणन कवि रत्न।' पुरस्कार समिति ने लिखा– "हीरक ने सिद्ध किया कि साहित्य में सफलता का रास्ता पुस्तकालय से नहीं, बैनर से होकर जाता है।" अब नवोदित लेखक उनके घर के बाहर लाइन लगाते थे। कोई कहता– "सर, आप जैसा बनना है।" दूसरा पूछता– "सर, किताब कैसे हिट होती है?" हीरक सलाह देते– "पहले कवर डिज़ाइन तय करो, फिर विषय सोचो और प्रेस विज्ञप्ति में भावनाएँ नहीं, फॉण्ट साइज बड़ा रखो।" एक ने डरते हुए कहा –"सर, अगर कहानी अच्छी न हो तो?" वे मुस्कुराए– "तो 'रील' बना लो बेटा, कहानी से ज्यादा दर्शक वहीं हैं।"

अब हरियाली प्रसाद के सोशल मीडिया पर हज़ारों फॉलोअर थे। हर दिन वे लिखते– "साहित्य को भाव नहीं, व्यूज़ चाहिए।" "जो बिकता है, वही टिकता है।" कमेंट्स की बाढ़ आती, फैन क्लब बनते और वहीं पुराने कवि अब भी टाइपराइटर पर बासी दर्द टाइप करते रहते। अब हीरक के घर के बाहर बोर्ड लग चुका था– "यहाँ प्रवेश केवल बेस्टसेलर लेखकों को।" वे अपने पुराने मित्रों को पहचानने से इंकार कर देते। जो कभी उनके साथ रद्दी बेचकर कविता छपवाते थे, अब वही गेट पर खड़े थे और गार्ड कह रहा था– "सर, अपॉइंटमेंट लीजिए।" उनके दिमाग में अब एक ही विचार रहता– "लेखन नहीं, लॉन्चिंग ही साधना है।"

एक दिन उन्हें राष्ट्रीय साहित्य महोत्सव में बुलाया गया। मंच पर तीन पुरस्कृत कवि बैठे थे और बीच में हीरक। संचालक ने पूछा– "साहित्य के भविष्य पर आपका विचार?" हीरक ने माइक उठाया– "साहित्य का भविष्य

उज्ज्वल है, बशर्ते उस पर लाइटिंग अच्छी हो।" पूरा सभागार ठहाकों से गूँज उठा। उन्होंने आगे जोड़ा – "कला अब काव्य नहीं, कॉर्पोरेट कवच पहन चुकी है। जिसने पोस्टर जीता, वही पाठक जीतेगा।" कुछ सालों बाद उनकी किताबें कम, उनके इंटरव्यू ज्यादा छपने लगे। पत्रकारों ने पूछा – "अब आप क्या लिख रहे हैं?" वे बोले – "अभी नया कवर सोच रहा हूँ।" धीरे-धीरे नया चलन आ गया – अब युवा लेखक सीधे बुक-रील से शुरू करते। कहानी नहीं लिखते, शूट करते। साहित्य सम्मेलन नहीं होते, कंटेंट फेस्टिवल होते। और हर पोस्टर के कोने में एक छोटा नाम लिखा रहता – "आदरणीय हरियाली प्रसाद हीरक से प्रेरित।"

कहते हैं, हर युग में एक 'गुरु' होता है। इस युग में वह गुरु वही था, जिसने साबित किया – "जहाँ शब्द थक जाएँ, वहाँ स्लोगन बोलते हैं।" अब साहित्य अकादमी की दीवारों पर भी एक वाक्य लिखा है – "लेखक वही नहीं, जो लिखे, लेखक वह भी है जो लॉन्च करे।" और इस नए दर्शन के प्रवर्तक का नाम है – हरियाली प्रसाद हीरक – ब्राडेड शब्दों के महारथी। किताब की आत्मा अब बुकमार्क में कैद है, क्योंकि पाठक कवर से आगे नहीं जाता। लेखक की पहचान अब उसकी रॉयल्टी से नहीं, रिसेप्शन हॉल से होती है। और सबसे बड़ा सच – "जब साहित्य बिकता है तो लेखक अमर नहीं होता – बल्कि ऑटोग्राफ सेलेब्रिटी बन जाता है।"

❋❋

डॉ. वेद मित्र शुक्ल के सॉनेट

1.

सुख की सीमाएं जानीं, पर दुख का तो रे,
पाया पारावार नहीं, बस सहते जाना
धीरज की डगमगा रही इक नाव सहारे
आख़िर कब तक, ओ रे विधना! तनिक बताना
महसूसा कब सुख को हमने, आया है कब
और गया कब, कौन राह है, कौन बात है
जान सके कब, आते-जाते क्षणिक लगा सब
ज्यों उजियारा पल दो पल का, शेष रात है
सुख-दुख में इक-सा रहने का ज्ञान बड़ा, पर
कृष्ण और अर्जुन जैसे कब हो पाएं?
नहीं बुद्ध भी, जीत सकें जो दुख के सब डर
आम आदमी हैं हम कैसे दुख को गाएं?
आह, थाह है कहाँ, समन्दर दुख का ऐसा,
मत पूछो, ऐसे में यारा, जीवन कैसा?

2.

सुख-दुख के ही रंग नहीं इस प्यारे जग में
हैं अनदेखे, परे समझ के अनगिन यारा!
अलगा पाए कौन घुले ये यों रग-रग में
क्या मतलब होता दुनिया का इन-बिन यारा!
उलझे-सुलझे धागों में जो बुनी ज़िन्दगी
फीके हों या चटख मगर ये भाँति-भाँति के -
रंग सँजोये, मानवता की करें बंदगी
गंगा रस की है यह तो, जीवन है इससे
राग-रंग में जीती जाती दुनिया सारी
स्वर्ग हुआ या जन्नत इनकी किसे पड़ी है
इंसानी दुनिया ही लगती है सुखकारी
धर्मग्रंथ सब एक तरफ़ यह बात बड़ी है
रंग मिलें दुनियादारी में जो भी जी लें
जाम हाथ में जो भी आए, आओ, पी लें।

संपर्क :
एसोसिएट प्रोफेसर, अँग्रेजी विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
राजा गार्डेन, नई दिल्ली – 110015, मोबाइल – 9599798727

लोकतंत्र का मज़ाक

जन्म : *10 मई 1969*
(गंगापुर सिटी, राजस्थान)
शिक्षा : *हिंदी साहित्य व शिक्षा में अधिस्नातक*
सृजन : *मार्चोत्सव एक ऑफिस का, दीवानों की फितरत, इसकी टोपी उसके सर, तीन व्यंग्य संग्रह व व्यंग्य उपन्यास फितरत प्रकाशित। केंचुली उपन्यास का दैनिक समाचार पत्र में धारावाहिक प्रकाशन, 600 से अधिक व्यंग्य विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित, आकाशवाणी से व्यंग्य वार्ताओं का प्रसारण।*
संपर्क :
93, 'मुक्तायन'
कांति नगर, मुख्य डाकघर के पास,
गंगापुर सिटी-322201
जिला-गंगापुर सिटी
(राजस्थान)
मोबाइल- 9413503841
ईमेल : *hanumanmukt@gmail.com*

*** हनुमान मुक्त**

मैंने अभी-अभी खाना खाया था और डकारें लेने की सोच ही रहा था कि वह एकदम हमारे कमरे में घुस आया और सीधे हमारे सोफे पर आकर धड़ाम से बैठ गया।

बैठते ही उसने हमें अभिवादन किया। कहा, "नमस्ते जी।"

मैंने भी उसकी नमस्ते का जवाब दिया, "नमस्ते।"

थोड़ा मुस्कुरा कर वह बोला,"पहचाना मुझे?"

मैंने कहा,"नहीं।"

वह और जोर से हँसा और बोला,"कैसे पहचानोगे? तुम्हारी शादी हुई है, तब से मैं इस घर से बाहर हूँ।"

मैंने कहा,"साफ-साफ बोलो ! मैं कुछ समझा नहीं ।"

बोला, "मैं लोकतंत्र हूँ। अब आया कुछ समझ में? पहचाना मुझे?"

तभी मेरी पत्नी ने पानी लेकर कमरे में प्रवेश किया। शायद उसने हमारी बातचीत सुन ली थी। आगंतुक के मुँह से लोकतंत्र सुनते ही उसका चेहरा गुस्से से लाल हो गया ।

घर बैठे अतिथि की गरिमा को ध्यान में रखते हुए, मेरी ओर घूरते हुए वह पानी का गिलास टेबल पर रखकर अंदर चली गई।

उसके जाने के बाद मैं बोला, "पहचान गया, लेकिन आज इधर-किधर?" "ऐसे ही आपकी तरफ! सोचा, आप फुरसत में हो तो कुछ गपशप करें । आजकल देश में वोट चोरी पर बहुत बहस हो रही है । सोचा, तुम बुद्धिजीवी हो, तुम्हारे भी विचार जान लूँ ।"

"हाँ ! हाँ! क्यों नहीं?"

लोकतंत्र में गपशप करना ही तो काम रह गया है। वैसे भी इस देश में एक वोट ही तो है, जो सबसे पवित्र माना जाता है। किसान, मज़दूर, अफ़सर, नेता, अमीर, गरीब, हिन्दू, मुस्लिम, आदमी, औरत चाहे कोई भी हो, सबके वोट का वजन बराबर होता है। यही वह हथियार है, जिससे जनता किसी को भी राजा बना देती है और राजा को सड़क पर उतार देती है।

अभी हाल के दिनों में इसका मूल्य इतना बढ़ गया है कि अब इसे पवित्र मानने के बजाय लोग इसे चोरी करने लायक चीज़ समझने लगे हैं।

"वे दावा कर रहे हैं कि देश में 'वोट चोरी' हो रही है। उनके मुताबिक यह कोई मामूली चोरी नहीं, बल्कि एक 'मेगा "रॉड" है, मतलब यह न कोई

जेब काटना है, न बटुआ मारना, बल्कि लोकतंत्र का पूरा तिजोरी-तोड़क ऑपरेशन है।

चोरी का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि इंसान का। पहले अनाज चोरी होता था, फिर सोना-चाँदी, फिर सत्ता और अब वोट। पहले लोग रात के अंधेरे में चोरी करते थे, अब वोटर लिस्ट के डेटा सेंटर में। पहले चोर पकड़ने के लिए मोहल्ले वाले लाठी लेकर दौड़ते थे, अब 'फैक्ट-चेक' टीम ट्वीट लेकर दौड़ती है।

चुनाव में वोट चोरी का पहला आरोप शायद उसी दिन लगा था, जब किसी गाँव के प्रधान ने अपने भतीजे को कहा था,"अरे बेटा, तुम्हारे चाचा वोट देने गए थे, वहाँ उनका नाम नहीं मिला। लेकिन चिंता मत करो, चाची ने दो बार वोट डाल दिया है।"

लोकतंत्र मेरी बात सुनकर मन-ही-मन हँस रहा था। लोग किस तरह लोकतंत्र का मजाक उड़ाते हैं, यह सुनकर उसके चेहरे की त्यौरियां बदल गई।

वह बोला, "वे जो प्रेस कांफ्रेंस करके विभिन्न आरोप जैसे मतदाता सूची में रहस्यमयी नाम सीसीटीवी फुटेज का गायब होना, मतगणना में अवश्य शक्तियों का हस्तक्षेप की बात कह रहे है? आंकड़ों को ऐसे पेश कर रहे हैं, जैसे किसी जासूसी फ़िल्म का क्लाइमैक्स हो। हर स्लाइड पर एक नया 'खुलासा'। कभी महाराष्ट्र में 'एक करोड़ फर्जी वोटर' तो कभी 'दिल्ली में बोगस वोट की बाढ़। इस बारे में आपका क्या ख्याल है?' वे बार-बार वोट चोरी बंद करने और मुझे (लोकतंत्र) बचाने की बात कर रहे हैं।

लोकतंत्र की बात सुनकर मुझे हंसी आ गई। मैं बोला,"उलटा चोर कोतवाल को डांटे' वाली कहावत सिद्ध हो रही है। इससे पहले तुम्हें बचाने के इन्होंने क्या-क्या उपाय किए हैं? तुम्हें सब पता होगा। पूर्व में लोकतंत्र को किस तरह से तार-तार किया जा चुका है, क्या तुम्हें पता नहीं?"

अक्सर चुनाव आयोग खुलकर सामने नहीं आता है। वह बहुत शांत अंदाज में अपना काम करता रहता है, लेकिन इस बार इनकी यही बचकानी हरकतों से वह गरज उठा है । चुनाव आयोग ने उनको नोटिस भेज दिया, "या तो सबूत दो, या माफ़ी माँगो।"

...और उन्होंने भी इधर-उधर से इकट्ठे करके सबूत दे दिए। आयोग ने सबूतों की जांच करवाई और कहा कि उन्होंने जो दस्तावेज़ पेश किए, वो फर्जी हैं। अब बताओ क्या किया जाए?

वे कह रहे हैं , "नहीं, ये सच्चे हैं।"

आयोग कहता है, "ये झूठे हैं।"

.और जनता कह रही है, 'भई, हम तो वोट डालने भी नहीं गए थे, फिर हमारा नाम कैसे आ गया? हमें तो यह तक नहीं पता।'

मीडिया चैनल इसे लोकतंत्र (यानी तुम्हारा) का 'सबसे बड़ा घोटाला' घोषित कर रहे हैं। स्टूडियो में बहसें हो रही है।

• एक पक्ष : "वे सही कह रहे हैं, वोट चोरी हो रही है।"

• दूसरा पक्ष : "ये सिर्फ़ चुनाव हारने का बहाना है।"

• एंकर : "दोनों शांत रहिए, हमें ब्रेक लेना है।"

सोशल मीडिया पर वोट चोरी ट्रेंड करने लगा है। मीम फैक्ट्री चालू हो गई है। किसी ने 'चोरी' को 'चोरी-चोरी चुपके-चुपके' बना दिया, तो किसी ने 'गली में आज चोर आया' गाने के साथ उनकी क्लिप जोड़ दी। चैनल पर एक बूढ़े मतदाता से पूछा गया, "बाबा, आपको वोट चोरी पर क्या कहना है?"

उसने कहा ,"बेटा, मेरे नाम से पिछले पाँच चुनावों में मेरा वोट पड़ रहा है और मैं पिछले सात साल से गाँव ही नहीं गया।"

एक कॉलेज छात्र बोला, "सर, हम तो फोटो खिंचवाने गए थे, वो कहने लगे वोट डालना पड़ेगा।"

अब बताइए यह वोट चोरी नहीं है तो क्या है? इसे बंद करने के लिए ही वोटर लिस्ट की गहन जांच की जा रही है और नाम हटाए जा रहे है। यह सब तुम्हें यानी लोकतंत्र को बचाने के लिए ही किया जा रहा है।

लोकतंत्र बोला, "तुम्हें पता है उन्होंने मुझे बचाने के लिए एक वेबसाइट बनाई है। उसमें जाकर वोट चोरी की शिकायत कोई भी दर्ज करा सकते हैं।"

अब जनता को लोकतंत्र बचाने के लिए इतना स्मार्ट तो बनना ही पड़ेगा। इंटरनेट कनेक्शन, स्मार्टफोन आदि की समझ उसे होनी ही चाहिए । गाँव के बुजुर्गों को जो पहले तो बस वोट डालने जाते थे, अब चोरी रोकने के लिए भी पंजीकरण करना पड़ेगा?"

" .... और सबसे महत्त्वपूर्ण बात , लोकतंत्र, जो मैं पहले जनता के लिए था, जनता के भरोसे था, अब डेटा,

सर्वर, वेबसाइट और पोर्टल के भरोसे हो गया हूँ। चोर का चेहरा जनता ने कभी देखा नहीं, लेकिन उसके नाम पर राजनीति खूब हो रही है।

और अगर सच में वोट चोरी हो रही है, तो ये कोई एक पार्टी का मसला नहीं, यह पूरे सिस्टम की बीमारी है। लेकिन राजनीति में बीमारी का इलाज कम और बीमारी का प्रचार ज्यादा होता है।

लोकतंत्र बचाने की इस 'वोट चोरी' बहस में जनता हँस रही है, नेता हँस रहे हैं, मीडिया हँस रहा है। और शायद असली चोर भी हँस रहा है। क्योंकि उसका नाम अब तक किसी को पता नहीं चला।

शायद यही लोकतंत्र यानी मेरी खासियत है। लोकतंत्र में सबसे ज्यादा गंभीर मुद्दे भी हँसी-मज़ाक में निपट जाते हैं।

"...और जनता? हमेशा की तरह फिर लाइन में लगेगी, वोट डालेगी और फिर सुनेगी कि 'वोट चोरी' हो गई।"

लोकतंत्र की बात सुनकर मैं गंभीर हो गया। मैंने कहा, "मेरी शादी के बाद से जैसे तुम मेरे घर से गायब हुए थे, वैसे ही अब भी गायब हो जाओ। मुझे मेरे घर में मेरे देश में चल रहे जैसा लोकतंत्र नहीं चाहिए। मुझे मेरी पत्नी की तानाशाही मंजूर है, लेकिन इस तरह लोकतंत्र की धज्जियां उड़ाते मैं नहीं देख सकता।"

मेरी बात मेरी पत्नी ने सुन ली। सुनकर वह बहुत खुश हुई ।

.....और लोकतंत्र मेरी बात सुनकर दबे पांव घर से निकल गया।

राजकुमार जैन राजन की कविताएँ

पूर्ण सत्य

दोस्त!
जब-जब तुम मुस्कराये
तुम्हारे कदमों की आहट से
हमारे संघर्ष की धार
चलती रही पीड़ा के द्वार तक

सुलगते अरमानों
और बुझते इरादों को
हवा दे जाता है
यह संघर्ष
और दिल पर
दस्तक देने लगती है
एक क्रांति

एक बीज जो बस
अंकुरण की चाह रखता है
धरती की असीम छाती पर
डोलती हवा का
अचानक
एक पल ठहरना
और गुजरना मुस्कराहते हुए

धरती के आँचल में बीज़ का
मिट जाना ही तो
नव सृजन है
बीज से वृक्ष बनने की यात्रा
एक समर्पण
बीज वृक्ष बन
आकाश की ऊंचाइयों को छूता
पर धरती से अपना रिश्ता
नहीं भूलता कभी भी

यही जीवन सत्य है
यही पूर्ण सत्य है!

पुनर्जन्म

पेड़ की पीली हो गई
पत्तियों ने
मेरी ओर मुस्करा कर देखा
और पूछा -
मौसम बदल रहा है
यह पेड़ भी गिरा ही देगा हमें
नव किसलयों के स्वागत में

क्या तुम भी
टूट कर
बिखरना जानते हो ?
यही है प्रकृति का शाश्वत नियम
प्राचीन की विदाई ही
नवीन का स्वागत है
जीवन के सृजन में

खुद से खुद की लड़ाई
लड़ते-लड़ते टूटने पर ही
नव-सृजन होता
यह सृष्टि का अंतिम बिंदु होता है
जहाँ मिट जाने का भाव
मन को विश्वास में लेता है
इसलिए टूटकर
मिट जाने का दर्द
हमें नहीं होता है
हमारे समर्पण से ही तो

नव-पल्लव खिलता है

हमारा यही विश्वास
प्रेम की नम सतह पर
भविष्य को
एक नई दिशा देता है
और अपनी पीड़ा का
उत्सव मनाता है

ऐसे ही तो होता है
मानवता का पुनर्जन्म !

उत्खनन

मेरे पास
कुछ थके शब्द और
एक उदास कविता है
युग की हताशा में पढ़ता हूँ
जिसे बार-बार
जो कोशिश करते हैं
अवसाद में उत्सव मनाने की
मन के मरुस्थल के
रूखेपन में
मेरा खंडित जीवन
समय के देवता का वरदान
टटोल रहा है मृगतृष्णा-सा

मुझे नहीं चाहिए कोई बाँह
छल-कपट के लिए
किसी की चाह का सूरज
न जाने कब से प्यासा है
आंधियों के गुज़रने पर
बची रह जाती है-
अवसाद और दुःखों की
कुलबुलाहटें
एक अज़ीब ही
शांति व्याप्त हो जाती
हर तरफ़ चुपचाप

मेरी कविता तो
रिश्तों के बदलते रंग देख कर
चुपचाप गिराती है अश्रु-कण
और थके शब्द
कर रहे जतन
मन के खाली निर्ज़न में
खुशियों के उत्खनन के लिए
जहाँ होता रहे संबंधों का
हरा-भरा सूर्योदय !

संपर्क :
चित्र प्रकाशन
आकोला -312205
(चित्तौड़ गढ़) राजस्थान
मोबाइल : 9828219919
ईमेल :
rajkumarjainrajan@gmail.com

संजीव द्विवेदी की कविता

प्रेम मौन है

अंतर्मन में प्रेम मौन है
बाजारों में खोज रहे हम
वस्तु बने सब घूम रहे हैं
बिकने को तैयार यहां हम ।

जो दिखता है वो बिकता है
इसी मंत्र का जाप हो रहा
नासमझी का दौर तो देखो
सब कुछ सत्यानाश हो रहा ।

पुष्पगुच्छ सब हाथ में लिए
जाने किसको ढूंढ रहे
भटक गए हैं सब रस्ते से
सेलिब्रेशन साथ लिए

आओ अपने अन्दर झांकें
कितना स्वच्छ बचा है मन
कितना कोमल हृदय बचा है
कितना सच्चा निर्मल तन ।

सम्पर्क :
अशोक नगर,
बशारतपुर, गोरखपुर, उ.प्र.
मोबा. 8299474399

पवन शर्मा की कविताएँ

1. खिड़की

दसवीं मंज़िल का फ्लैट था।
दरवाज़ा खुलता नहीं था,
खिड़की खुलती नहीं थी।

पड़ोसी कहते, 'उनका बेटा न्यूयॉर्क में सॉफ्टवेयर इंजीनियर है।'
एक दिन डाकिया आया, चिट्ठी दी–
हाथ से लिखी हुई।

'बेटा, सब ठीक है। पर अब खिड़की खोलनी भारी लगती है। तू होता तो कहता– अंदर धूप नहीं आती, माँ।'

पांच दिन बाद खिड़की खुली।
माँ नहीं थी।
धूप भी चुप थी।

2. लिफ्ट में मिलने वाला आदमी

हर सुबह वो आदमी लिफ़्ट में मिलता–
चुप, थका, सलीके से।
नीचे उतरते वक्त हम दोनों मुस्कराते।

एक दिन लिफ़्ट में उसकी जगह एक चिट चिपकी थी–
'फ़्लैट नंबर 904 – हार्ट अटैक से निधन।'

मैं देर तक खड़ा रहा–
शहर में हम एक–दूसरे को जानते नहीं, फिर भी एक–दूसरे की जगह भर जाते हैं।

3. चुप रहने वाला बच्चा

भीड़ भरी मेट्रो में एक बच्चा था– माँ की गोद में, खामोश।

सब लोग मोबाइल में झुके थे।
एक बुढ़िया ने झुककर पूछा, 'बोलता नहीं क्या?'

माँ मुस्कुरा दी, 'शहर में बोलने की इजाज़त कहाँ है, अम्मा?'

4. किराए का घर

राघव की रैक में चार पते दर्ज थे।
हर घर में वही अलमारी, वही बिस्तर, वही पर्दे।

लेकिन दीवारें हमेशा नयी थीं–
और दरवाज़े हमेशा पराए।

उसने एक बार कहा, 'माँ, अब बस वहीं रहूँगा जहाँ दरवाज़ा खोलते हुए डर न लगे।'

माँ चुप थी।
उसे पता था–शहरों में ऐसे दरवाज़े नहीं बनते।

5. कॉफी वाली लड़की

कॉफी शॉप के कोने में एक लड़की
रोज़ आती।
लैपटॉप खोलती,
कॉफी ठंडी होने देती।

मैंने एक बार पूछा,
'काम करती हो?'
उसने कहा, 'नहीं, बस ये जगह घर
जैसी लगती है। बातें नहीं करनी पड़ती
यहाँ। कोई कुछ नहीं पूछता।'

हम दोनों चुप रहे–
शहर में कभी-कभी चुप्पी ही सबसे
सच्चा संवाद होती है।

6. बर्थडे

अंश ने बेटी का पहला जन्मदिन पाँच
सितारा होटल में मनाया।
बैंड, डेकोरेशन, वीडियो शूट।
बीच पार्टी में बच्ची रो पड़ी।
अंश चिढ़ गया, 'क्या हुआ अब?'

पत्नी बोली, 'शायद उसे माँ चाहिए।'
औरत ने बच्ची को गोद में लिया।
लाइट्स थोड़ी धीमी कर दी गई।

शहर में माँ बनने की भी स्क्रिप्ट
होती है।

7. खामोश कॉलोनी

बुज़ुर्गों की एक कॉलोनी थी-सबके
बच्चे विदेश या दूसरे शहरों में।

हर बालकनी में एक कुर्सी थी।
हर कुर्सी पर एक इंतज़ार।

एक दिन चायवाला आया, 'अम्मा, आज
अकेले क्यों?'

अम्मा बोलीं, 'कुर्सी खाली नहीं है बेटा,
बस आज उसका मन नहीं था।'

शहरों में कभी-कभी हम अपनों की
आदत छोड़कर, उनकी यादों से रिश्ता
बना लेते हैं।

8. ग्लास वाला ऑफिस

सिद्धार्थ के ऑफिस में खिड़की नहीं थी,
लेकिन लाइटें बहुत थीं।

हर रोज़ वो पसीना पोंछता,
प्रेज़ेंटेशन भेजता,
मीटिंग करता।
शाम को चेहरे पर एक सी मुस्कान
चिपकाता।

एक दिन छुट्टी के दिन वो बैठा रहा,
घंटों।

किसी ने पूछा, 'तू आया क्यों?'

उसने कहा, 'घर में कोई इंतज़ार नहीं
करता अब।'
शहर में काम अक्सर परिवार से बड़ा
हो जाता है।

9. सेल्फ़ी

रुचिका और अक्षय पार्क में साथ बैठे थे।
उसने कैमरा निकाला, पोज़ किया,
'अच्छा, अब स्माइल।'

पीछे एक बुज़ुर्ग कपल पेड़ के नीचे
चुपचाप बैठा था- हाथ थामे।

रुचिका ने कहा,
'देखो,
कितनी बोरिंग लाइफ़ होगी ना!'

अक्षय ने तस्वीर ली और मोबाइल बंद
कर दिया।
उसे उस जोड़े में कुछ ज्यादा सच्चा
दिखा।

शहर में असली प्रेम कैमरे से दूर होता है।

10. सब अच्छा है

कविता के इंस्टा पर हर रोज़ नई फ़ोटो,
नई जगह।

'बड़ी खुश दिखती हो।' कोई कॉमेंट
करता।

वो रिप्लाई में मुस्कराता इमोजी भेज
देती।

रात को मोबाइल का लाइट ऑफ करके
वो तकिये में मुँह छुपा लेती।

शहर में अब दुख नहीं रोते,
वो अपलोड होते हैं।

सम्पर्क :
विद्या भवन,
वार्ड नंबर-17, सुकरी चर्च,
जुन्नारदेव, जिला-छिंदवाड़ा
मध्यप्रदेश-480551
मो. 9425837079/8319714936
ईमेल :
pawansharma7079@gmail.com

अवैद्य आलोक की कविताएं

1

सिलमिली

संसार के सर्वोत्कृष्ट रंग
मैंने खर-पतवारों में ही देखे हैं
घसकटनी के सिर घास का गट्ठर
गट्ठर के दोनों किनारों परट
लचक-लचक ललचाती जा रही थी सिलमिली।

इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में
मेरे खर-पतवारी प्रेम को देखते हुए, मेरे मित्र ओंकार ने कहा
'हर पार्कों में कुछ क्यारियां होनी चाहिए
भंगरा, सत्यानाशी, कृष्णनील, महकुवा के भी'

नहीं मित्र, बिल्कुल नहीं,
मैंने कहा, रहने दो उन्हें आवारा ही
वरना आराधनाओं से ऊबे लोग किधर जाएँगे
शायद तब ये खर-पतवार भी इतरा जाएँ
इनके पास भी
फूल तोड़ने की मनाही करने वाला बोर्ड न लग जाए,
जो बचे रहे कल तक पत्थर से
उनके लिए भी कोई पत्थर न गढ़ने लग जाए
उन्मुक्त खिलखिलाहट गमले में कैद हो जाए
प्राचीन रक्त के बदले अर्वाचीन रक्त वैध हो जाए।

इस मेट्रोपॉलिटन नगर में
आज पत्थर-पत्थर हो गयी है काया,
पर साथ चलता साया
आज भी सिलमिली सम्हाले चल रहा है।

2

चिरई चुगनी वाले दिन

सम्पन्नता सम्हाले लोग
कार से उतर-उतर
चौराहों और चबूतरों पर फेंकते हैं खूब दाने
रखते हैं पानी
कि उनके भीतर का जिंदा रहे बाज।

हर दिन उदग्र उदर का एक कोना
निश्छलता, निर्मलता, निश्चिंतता से पाट
मजदूरी में पाए एक बोझ धान से
थोड़ी बालियां निकाल
चिरई चुगनी बना
घर के मुडेर पर लटकाने वाले दिन लद गए।

3

गेहूं और गीत

बिना प्रार्थनाओं, आशा, आकांक्षाओं से जन्मे लोग
बड़े ही सलीके से करते थे कटाई
वहाँ जहाँ गेहूँ से लिपटी
हिरनखुरी के सफेद फूल
गा रही होती कटाई के गीत।

कंबाइन हार्वेस्टर में बैठे लोग
नहीं बचा पाते हैं हिरनखुरियों के फूल
स्वर्ण सुनहले गेहूं तो आज खूब उपज रहें हैं
पर विदा हो गए खेतों से गीत।

सम्पर्क :
सी 6/354, यमुना विहार, दिल्ली - 110053

गाँव के महाभारत की कथा

ग्राम्यजीवन विश्व-कथासाहित्य में प्रारंभ से ही केंद्र में रहा है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद काल से ग्रामीण जीवन विषयवस्तु के रूप में शीर्ष पर रहा। उस काल में आबादी एवं आकर्षण के आधार पर नगरीय जीवन इतना महत्त्वपूर्ण भी नहीं था कि कहानियों के कथानक एवं पात्र नगरों से उठाए जाएँ। आधुनिक ग्राम्यजीवन पर कहानियों का एक ऐसा ही संग्रह प्रख्यात नवगीतकार ओम धीरज लेकर आए हैं। 'अर्थात् गाँव का महाभारत' उनका पहला कहानी संग्रह है, जो अपने शीर्षक से ही कथावस्तु का संकेत कर जाता है।

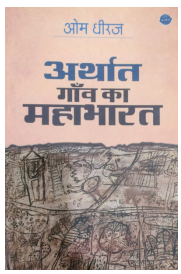

पुस्तक का नाम : अर्थात् गाँव का महाभारत (कहानी संग्रह)
लेखक : ओम धीरज
प्रकाशक : सर्वभाषा प्रकाशन, जे-49, गली नं. 38, राजापुरी, मेन रोड उत्तमनगर, नई दिल्ली - 110059
पृष्ठ : 143 **मूल्य** : रु 299/ (सजिल्द)

ओम धीरज मुख्यत: नवगीतकार के रूप में जाने जाते हैं। उनके नवगीतों में गाँव अपने गँवईपन की सहजता में मौजूद रहता है और वह गाँव के हर पक्ष का अवलोकन करता है। उनकी लोकचेतना बहुत समृद्ध है। गाँव तथा गाँव की यादों से गहराई तक जुड़े रहने के कारण उनमें गाँव अपनी सच्चाई में जीवित है। वे उसी सच्चाई को अपने इस प्रथम कहानी संग्रह 'अर्थात् गाँव का महाभारत' में बड़ी शिद्दत से लेकर आते हैं। इसके अलावा, एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में उन्होंने प्राय: ग्रामीण क्षेत्रें में लंबी सेवा दी है। तहसीलदार, परगनाधीश एवं अपर जिलाधीश जैसे पदों पर कार्यरत होने के दौरान ग्रामीण क्षेत्रें की समस्याओं तथा जीवन को उन्होंने खूब समझा। ये सभी अनुभव उनके इस कथा संग्रह में आकार लेते हैं। यही कारण है कि संग्रह की लगभग सभी कहानियाँ यथार्थ से जुड़ी दिखती हैं, वह यथार्थ कैसा भी हो। कदाचित ही कहीं महसूस होता हो कि उन्होंने कहीं कल्पना या गल्प का सहारा लिया है।

संग्रह में कुल 21 कहानियाँ हैं, जो अपने लेखन के कालखंड के अनुसार दो खंडों में विभाजित हैं। वर्ष 1978 से 1981 तक के कालखंड की कहानियों को पूर्वपक्ष तथा वर्ष 2002 से अद्यतन काल की कहानियों को उत्तरपक्ष में रखा गया है। पूर्वपक्ष में जहाँ कुल दस कहानियाँ हैं, वहीं उत्तरपक्ष में ग्यारह। दोनों पक्षों की कहानियां गाँव के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं, किंतु दोनों में कालखंड का अंतर सहज ही नज़र आ जाता है। पिछली सदी का आठवाँ-नौंवा दशक गाँवों के लिए बैलों, बैलगाड़ियों, ढिबरी-लालटेन और चिट्ठियों का युग था। घोर अभावों का युग था। पूर्वपक्ष की कहानियों में वह समय पूरी तरह साकार हो रहा है। इक्कीसवीं सदी के आते ही संचार-क्रांति तथा वैश्विक ग्राम की संकल्पना साकार होने लगी थी। चिट्ठियों के स्थान पर पीसीओ तथा मोबाइल आने लगे थे। सरकारें बदलने से विकास की गति बढ़ी थी और गाँव में बैलों की नाद के स्थान पर ट्रैक्टर और मशीनें खड़ी होने लगी थीं। दो दशक बीतते गाँवों का नगरीकरण होने लगा था। शहरों में कमाने गए लोग वहीं बसने लग गए थे तथा गाँव में एक अलग किस्म का एकाकीपन, पेंचोखम तथा अलगाव पाँव पसारने लगा था। ओम धीरज के इस कहानी संग्रह के उत्तरपक्ष में यह सब चित्रित होता दिख रहा है।

वैसे तो पूरे संग्रह की कहानियाँ जीवन की जद्दोजहद को दिखाती हैं, किंतु पूर्वपक्ष की कहानियों में जद्दोजहद ज्यादा ही है। संभवत: इसलिए कि वह कालखंड ही कुछ ऐसा था। ग्रामीण निर्धनता दूर-दूर तक पसरी हुई थी।

सीमित साधनों में बच्चों की शिक्षा, किसी तरह ग्रेजुएशन या पोस्ट ग्रेजुएशन कर लेने के बाद एक शहर से दूसरे शहर प्रतियोगी परीक्षाओं तथा साक्षात्कार के लिए भागते युवक, जातीय वर्गीकरण एवं अन्य सामाजिक विग्रह का वह कालखंड इन कहानियों में खूब मुखरित हुआ है। संग्रह की पहली ही कहानी 'पारिश्रमिक' बेरोजगारी तथा वंचना को बाँचती हुई दिखती है। बेरोजगारी की स्थिति यह है कि एक इंटर बीटीसी युवक रिक्शा-चालन पर मजबूर है। कहानी का अंत थोड़ा नाटकीय और सुखद है कि उसकी योग्यता एवं कर्मठता से प्रसन्न होकर अंततः चेयरमैन साहब प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में रख लेते हैं।

इस खंड में कई कहानियाँ तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर वार करती हैं। ऐसा नहीं है कि ये कुरीतियाँ आज के समाज से पूरी तरह बाहर हो चुकी हैं, फिर भी इनकी संख्या तथा गहनता में कमी आई है। छुआछूत, बाल-मजदूरी ग्राम्यजीवन में एक बड़े अभिशाप के रूप में मौजूद थीं। छोटी कहानी 'छूना' छुआछूत की विसंगतियों को उजागर करती है तथा उसकी प्रासंगिकता पर भी प्रश्न उठाती है। वहीं 'दलदल' कहानी ग्रामीण जीवन के षड्यंत्रों, पारस्परिक खींचतान तथा बाल मजदूरी तथा मजदूरों पर अत्याचार जैसे प्रश्नों को लेकर चलती है।

लेकिन, जब उत्तरपक्ष की कहानियों का लेखन हुआ, तब ओम धीरज विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासनिक पद पर सेवाएँ दे रहे थे। एसडीएम, एडीएम जैसे पदों पर कार्यरत रहते हुए जनता की समस्याओं से जूझना और उनका निपटारा करना उनका दायित्व था। इन दायित्वों से गुजरते हुए लेखक को अनेक तरह के अनुभव हुए। समस्याओं की जड़ में जाने का अवसर मिला और इस प्रकार से ग्राम्यजीवन का एक नया दृष्टिकोण समझ आया।

प्रशासनिक थीम की कहानियों में 'टेलीफोन डेड', 'खुशी के आँसू', 'वैतरणी', 'भाय, भतीजा, भांजा अर्थात् गाँव का महाभारत' और 'एक्सीडेंट' हैं। इन सभी कहानियों में एसडीएम या अन्य उच्च पदस्थ अधिकारी प्रमुख भूमिका में हैं। यदि वे मुख्य पात्र नहीं हैं तो भी कहानी का गाँव उनके माध्यम से ही खुलता है। यह जगजाहिर तथ्य है कि गाँवों के अधिकतर लोग किसी-न-किसी मुकदमे के सिलसिले में अदालतों के चक्कर लगाते रहते हैं, जिनमें बहुतायत के मामले जमीन, बाग-बगीचे, आबादी, हकबंदी आदि को लेकर होते हैं और यह भी सत्य है कि प्रायः गरीब पक्ष अन्याय का शिकार होता है। उत्तरपक्ष की कहानियों को पढ़कर एक बार पुनः यही धारणा बनती है कि भारत के गाँवों को प्रशासनिक अधिकारी की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। यह बात अलग है कि कई बार सत्य जानते हुए भी अधिकारी परिस्थितिवश न्याय नहीं कर पाता।

कहानियों की पूरी जमीन गाँव की है, इसलिए कथाकार ने भाषा में गाँव के स्वाभाविक शब्दों का प्रयोग प्रचुरता में किया है। चरित्रों के नाम भी ग्रामीण पृष्ठभूमि से आते हैं, जिससे कहानी यथार्थ के करीब पहुँचती है। कुल मिलाकर कहानी संग्रह पिछले चार-पांच दशकों के गाँव का कच्चा-चिट्ठा खोलता है।

समीक्षक
-हरिशंकर राढ़ी

कंचनांजलि : विछोह की ज़मीन पर उपजा काव्य

विछोह ऐसा भाव है, ऐसी परिस्थिति है जो अकवि को भी कवि बना देता है।`। डॉ. रवींद्र उपाध्याय का काव्य-संग्रह 'कंचनांजलि' पढ़ते हुए ऐसा महसूस होना स्वाभाविक है, भले ही यह संग्रह उन्होंने अपनी पत्नी के देहावसान हो जाने से उपजे अपने निजी दुख के आप्लावन से लिखा हो।

डॉ. रवींद्र उपाध्याय साहित्य से गहरा नाता रखने वाले व्यक्ति हैं, यह बात अलग है कि लेखन की दुनिया में उन्होंने बहुत काम नहीं किया। उनका यह संग्रह पत्नी के निधन के दो दशकों बाद प्रकाश में आया है। इसमें पत्नी के बिछोह, उनकी स्मृति,

जीवनपथ पर अकेला पड़ जाने, संतानों के पालन-पोषण का बरबस पड़ा एकल दायित्व आदि का मिला-जुला घनीभूत दुख प्रतिबिंबित होता है। संग्रह में पत्नी को याद करते हुए मुक्त छंद एवं गीत शैली में जो उद्‌गार अंकित हैं, वे किसी उद्देश्य के अंतर्गत या लगातार नहीं लिखे गए हैं। जब-जब पीड़ा घनीभूत हुई, स्मृतियों के झंझावात आए, उसी समय कुछ पंक्तियाँ बरसीं और यह संग्रह तैयार हो गया। संग्रह में कुल कविताएँ/गीत हैं, जो लगभग बीस वर्षों की अवधि में सृजित हुए हैं। हाँ, सन् 2004 में अर्धांगिनी के महाप्रयाण के बाद के एक-दो वर्षों में आए गीतों की संख्या अधिक है, जो स्वाभाविक है।

पुस्तक का नाम : कंचानाजलि (गीत संग्रह)
कवि : रविन्द्र उपाध्याय
प्रकाशक : सुधा संस्मृति संस्थान, 527, कृष्णानगर प्राइवेट कॉलोनी, बशारतपुर, गोरखपुर,
पृष्ठ : 80 **मूल्य :** रु 200/ (सजिल्द)

संग्रह की पहली कविता 'कंचनांजलि' है। यह छंदमुक्त है और उत्तम पुरुष में लिखी गई है- 'मैं कंचन हूँ।' ऐसा लगता है कि संग्रह के प्रारंभ में ही कवि ने पत्नी को अपना स्वर देने की स्वतंत्रता दी है। यह स्वर प्रथम दृष्टि में तो हमें एक भारतीय पत्नी का लगता है, क्यांकि दिवंगता पत्नी का नाम कंचन है, किंतु जैसे ही हम आगे बढ़ते हैं, कंचन का श्लेष मुखर हो उठता है। अपनी मुखरता में कंचन की अन्योक्ति में नारी अपना त्यागमय रूप दिखा जाती है और कविता के अंत में वह पूर्णतया नारी स्वर बन जाती है। उसमें एक गहन नारी विमर्श दृष्टिगत होने लगता है कि किस प्रकार वह सभी कष्टों को सहकर भी मौन रहती है। वह धैर्य नहीं छोड़ती और किसी अन्य देह का शृंगार एवं समृद्ध बनने के लिए वह तपती-ढलती रहती है, किंतु जब उसे भौतिकता पर तौला जाता है तो वह कष्टानुभूति की पराकाष्ठा को पार कर जाती है। यदि इस रूपक को गंभीरता से लिया जाए तो कंचन के बहाने डॉ रवींद्र पत्नी के मूल्यांकन और श्रद्धा की बड़ी रेखा ही नहीं खींच जाते, अपितु वे नारीमात्र के महत्त्व को रेखांकित कर जाते हैं।

कविता की अंतिम पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

मैं कंचन हूँ/ आग में/ तप कर ही/ निखरता है/ मेरा रूप

ꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥ

मुझे/ सबसे अधिक/ कष्ट तब हुआ/ जब रत्ती से/ तौला गया मुझे/ बार-बार।

दूसरी कविता 'तुम ही तो थी!' में कवि अपने दांपत्य जीवन में पत्नी के आगमन से आई पारिवारिक एवं भावनात्मक समृद्धि के सुख को व्यक्त करता है तथा अंत तक उनके निधन से उपजी रिक्तता एवं कठिनता की पीड़ा को सलीके से स्वर देता है :

जीतकर /चली गई/अपने हिस्से का /महाभारत/ वहां अपने देश में/ और/ छोड़ दिया बच्चों को लिखने के लिए/ बचे हुए जीवन-गीता के / शेष अध्याय।

विचारणीय है कि डॉ. उपाध्याय पत्नी के प्रयाण को सामान्य रुदन से नहीं जोड़ते, अपितु उसे एक सहयात्रा, कर्मयात्रा एवं अंतत: कर्तव्यबोध से जोड़ते हैं। इस कविता में कलात्मक सुंदरता यह है कि डॉ. उपाध्याय का पत्नी के साथ कुल यात्रा अठारह वर्षों की रही, जिसे उन्होंने अठारह दिनों तक चले महाभारत युद्ध एवं गीता के अठारह अध्यायों से जोड़ दिया है। यह भी उल्लेखनीय है कि इतने विध्वंश के बाद भी महाभारत के परवर्ती काल में शांति एवं आदर्श दिखता है, क्योंकि गीता अठारह अध्यायों के बाद जीवन को कर्तव्यपथ पर छोड़ती है।

आगे आने वाली कविताओं में भी कवि की पत्नी के साथ स्मृतियात्रा चलती रहती है। एक वर्ष पूरा होने के बाद वह अपनी पत्नी को उसके माँ-रूप को देखता है जो अपने बच्चों को विद्यालय से आने पर दुलारती थी, उनकी पढ़ाई पर ध्यान देती थी और उनकी उपलब्धियों पर प्रसन्न होती है। यहाँ कवि को अपना दुख अपने बच्चों के दुख की तुलना में कम लगने लगता है। 'अंकित कर दो' कविता ऐसी ही है।

भारतीय गृहस्थ परंपरा में पत्नी से ही घर का होना माना

गया है – गृहिणी गृहमुच्यते। बिना गृहिणी घर – आँगन सूना हो जाता है। दीया – बाती, पूजा – आरती और त्योहार सूने हो जाते हैं। डॉ. उपाध्याय इस स्थिति का साक्षात्कार करते हैं, उसे भोगते हैं और कहते हैं :

मेरा घर अब नहीं, मेरा घर लग रहा,
बस के उजड़ा हुआ इक शहर लग रहा।

ꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥꕥ

जिसमें सजती नहीं अब कोई आरती,
एक सूना पड़ा खंडहर लग रहा
प्यारे बच्चे चहकने से वंचित हुए
कँपकँपाता हुआ उनका स्वर लग रहा।

किसी अपने के पास होने से दुनिया सुंदर हो जाती है। व्यक्ति उसी रमणीयता में रहना चाहता है, किंतु उसका चाहा सदैव नहीं होता। जब किसी कारणवश अलगाव हो जाता है तो उसे बीते हुए क्षण याद आने लगते हैं। पत्नी के निधन से जन्मे बिछोह के बाद कवि अनमना हो गया है। उसे दुनिया की सुख – सुविधाएँ एवं भोग अच्छे नहीं लगते। वह कह उठता है:

तुम्हारे पास रहने से ये धरती स्वर्ग लगती थी
तुम्हारे दूर जाने से सुखद आकाश लगता है
मुझे गैरों के कंचन महल अच्छे नहीं लगते
तुम्हारी याद से रोशन मेरा आवास लगता है।

इन पंक्तियों में जिस सहज पीड़ा को स्वर मिला है, उसे सहज ही समझा जा सकता है। किंतु यहाँ दूसरी पंक्ति में 'आकाश' तथा तीसरी पंक्ति में 'कंचन' का प्रयोग जिस कौशल एवं मितव्ययिता से किया गया है, वह अर्थ को बहुत विस्तार देता है। आकाश अनंतता, शून्य एवं रिक्ति का प्रतीक होता है। प्रिया के वियोग के बाद मन में रिक्ति आती है, शून्यता का आभास होता है, इसलिए आकाश को निहारना उसे प्रिय लगता है। कंचन में निहित श्लेष को देखने पर भी अर्थ चमत्कार का बोध होता है।

डॉ. उपाध्याय की 'कंचनांजलि' पर निजता अर्थात् पर्सनल टच होने का आरोप लग सकता है। उनके गुरु प्रो. रामचंद्र तिवारी ने अंशत: लगाया भी था। किंतु, जब किसी कवि की निजता कविता के रूप में निकलती है तो वह उसकी अपनी निजता नहीं रह जाती। वह अपने जैसे सहस्रों के स्वर पा जाती है और वह एक प्रकार से सार्वजनिक निजता हो जाती है, जिससे उन लोगों को शब्द मिल जाते हैं जिनके पास अपनी पीड़ा को व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं होती। डॉ. उपाध्याय का यह संग्रह निजता से जरूर आता है, किंतु संवेदनशीलता, कर्तव्यबोध एवं भारतीय दांपत्य जीवन के प्रेरक तत्त्व के दायित्व को निभाता है।

– हरिशंकर राढ़ी

व्यंग्य की लौ और समय का चेहरा : 'रोशनी की शिनाख़्त'

डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी का नया व्यंग्य – संग्रह 'रोशनी की शिनाख़्त' पहली ही नज़र में यह विश्वास जगा देता है कि हिंदी व्यंग्य अब भी अपनी नसों में वही साहस, वही निर्भीकता और वही तीक्ष्ण दृष्टि लिए खड़ा है, जिसने कभी परसाई और शरद जोशी को कालजयी बनाया। इस संग्रह को पढ़ते हुए लगता है – लेखक केवल अपने समय को बयान नहीं कर रहा, बल्कि उसकी गुत्थियों को सुलझाने के साथ – साथ उसे सवालों के कटघरे में भी खड़ा कर रहा है।

विषय – सूची देखने भर से अंदाज़ा हो जाता है कि लेखक ने समाज का कोई कोना अनछुआ नहीं छोड़ा – चमचों और जुगाड़ की नई नस्लें, मॉर्निंग वॉक पर अफसरशाही, भाषा के टोटम – टेटल, नदी और आदमी का आपसी संघर्ष, चोरी कि तफ़्तीश में पीड़ित के अपराधी बनने का व्यंग्यात्मक सच, बड़े आदमी के फ़ोन की दम्भभरी घंटी, सफलता के ख़तरों का विजयी विन्यास, मलबे के व्यापारियों का नैतिक ध्वंस, राम के 'अच्छे नागरिक' बनने की विडंबना, तिरंगे की नई कहानियाँ, ईमानदारी की लानत – इन शीर्षकों में ही आज के भारत की थकान, बेचैनी, उम्मीद

और व्यंग्य का सम्पूर्ण भूगोल उभर आता है। पढ़ते-पढ़ते महसूस होता है कि यह संग्रह किसी एक दिशा में नहीं बहता। यह कई दिशाओं में, कई परतों में एक साथ घूमता है-जहाँ हर व्यंग्य अपने भीतर एक अलग समाजशास्त्र लिए चलता है।

डॉ. चतुर्वेदी अपनी भूमिका में जिस चिंता को व्यक्त करते हैं, वही इस संग्रह की रीढ़ बन जाती है-कि व्यंग्य धीरे-धीरे गंभीरता की कोख से फिसल कर 'चुटकुला-व्यंग्य' में बदल रहा है। मंचों पर पीठ-थपथपाते चेहरों की भीड़ और तुकबंदी वाले तंज़ों की भरमार ने व्यंग्य को मनोरंजन की वस्तु बना दिया है। ऐसे में 'रोशनी की शिनाख़्त' एक प्रतिरोध का स्वर है-जो कहता है, व्यंग्य का काम हँसाना नहीं, हँसाते हुए असहज करना है। तालियाँ बटोरना नहीं, विचार जगाना है। यही कारण है कि इस संग्रह के व्यंग्य मुस्कान देते हैं, पर वह मुस्कान भीतर एक ठंडा कंपन भी जगाती है।

पुस्तक में कई व्यंग्य ऐसे हैं जिन्हें पढ़कर लगता है-लेखक केवल समाज पर उंगली नहीं रख रहा, बल्कि उसके भीतर धँसे नाखूनों की जलन तक पहुँचना चाहता है। मलबे के व्यापारी पढ़ें तो पता चलता है कि आज त्रासदियाँ भी एक 'अवसर' हैं-जिसके एजेंट, प्रतिशत और दरें तय हैं। तफ्तीश बताती है कि जांच-पड़ताल हमारे यहाँ सत्य की खोज नहीं, किसी सत्य को गढ़ने की कला भर रह गई है। आदमी और नदी विकास के उस तर्क को उजागर करता है, जहाँ नदी अपराधी है और आदमी पीड़ित। वहीं बड़े आदमी का फ़ोन और सफलता के ख़तरे हमारे सामाजिक स्टेटस की कृत्रिम चमक पर सटीक कटाक्ष हैं। और फिर आते हैं वे व्यंग्य-जैसा भी है पर है ताक़तवर, ईमानदारी की लानत, तिरंगे की नई कहानियाँ-जिनमें समाज के पाखंड इतने नंगे खड़े हैं कि पाठक असहज हुए बिना नहीं रहता।

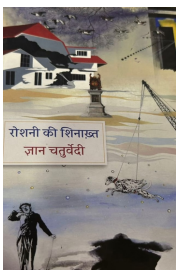

पुस्तक का नाम : रोशनी की शिनाख्त
लेखक – डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी
प्रकाशक – राजकमल पेपरबैक
मूल्य – 350रु /-

डॉ. चतुर्वेदी की भाषा की सबसे बड़ी ताक़त है-उसकी सरलता की आड़ में छिपी गहरी धार। वे कठिन बात को सहजता से कहते हैं, और सरल बात को व्यंग्य के चाकू पर धार देकर लौटाते हैं। कहीं-कहीं उनकी शैली इतनी मुलायम लगती है कि पाठक को लगता है यह तो मनोरंजन है, पर अंतिम पंक्ति आते-आते वही मुलायमियत भीतर चुभन बन जाती है। वे अपनी भूमिका में साफ कहते हैं- "परसाई-जोशी की नकल व्यंग्य नहीं है, अपने समय की धड़कनों को पकड़ना व्यंग्य है।" यह वाक्य इस संग्रह का आत्मकथन भी है और समकालीन लेखकों के लिए एक सीख भी।

किताब पढ़ने पर यह भी समझ आता है कि लेखक केवल व्यंग्य नहीं लिख रहे, वे हिंदी व्यंग्य की दिशा तय कर रहे हैं-कहाँ चूक हो रही है, कहाँ सुधार की गुंजाइश है, और कहाँ व्यंग्य का मूल दायित्व अब भी बचा हुआ है। आज जबकि लोकतंत्र से लेकर निजी जीवन तक, हर ओर शोर और विचलन का मौसम है, 'रोशनी की शिनाख़्त' उस शांत पर तेज़ रोशनी की तरह है जो अंधेरों के चरित्र को पहचानना सिखाती है।

अंततः, यह संग्रह केवल पढ़ने योग्य नहीं-सोचने योग्य है। यह बताता है कि अगर व्यंग्य सच में रोशनी है, तो उसकी शिनाख़्त करना ज़रूरी है। और इस शिनाख़्त के लिए यह पुस्तक समकालीन हिंदी व्यंग्य की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है-कसावट भरी, तीखी, पठनीय और लंबे समय तक स्मृति में रहने वाली।

–मुकेश गर्ग 'असीमित'
डॉ. मुकेश गर्ग, गर्ग हॉस्पिटल,
स्टेशन रोड, गंगापुर सिटी,
राजस्थान - 322201

खोज – खबर

निज भाषा का मतलब केवल हिन्दी ही नहीं है

(संगीत नाटक अकादेमी द्वारा भाषा एवं संस्कृति विषयक संगोष्ठी का आयोजन)

संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त संस्था, संगीत नाटक अकादेमी द्वारा 15 सितंबर से 24 अक्टूबर 2025 तक हिन्दी पर्व का आयोजन किया जा रहा है। इसी श्रृंखला में 23 सितंबर को 'भाषा एवं संस्कृति' विषयक संगोष्ठी का आयोजन, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली स्थित मेघदूत थिएटर में किया गया। संगोष्ठी में एनसीईआरटी के पूर्व प्रोफेसर डॉ. रामजन्म शर्मा, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रलय, भारत सरकार में उप निदेशक डॉ. छबील कुमार मेहेर, कला मर्मज्ञ श्री विजयशंकर मिश्र साहित्यकार श्री हरिशंकर राढ़ी वक्ता के रूप में उपस्थित थे। कार्यक्रम का आरंभ करते हुए सहायक निदेशक (राजभाषा) डॉ. तेजस्वरूप त्रिवेदी ने आमंत्रित वक्ताओं का स्वागत किया और अकादेमी के सचिव श्री राजू दास ने अंगवस्त्रम भेंट कर वक्ताओं का सम्मान किया।

अकादेमी के सचिव श्री राजू दास ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि एक समय था, जब असम जैसे हिंदीतर राज्य में हिंदी बहुत कम बोली और समझी जाती थी, लेकिन आज के समय में असम का बच्चा-बच्चा हिंदी भाषा से परिचित है। श्रीमंत शंकर देव साहित्य का उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि असमी भाषा में बहुत से ऐसे शब्द हैं जो हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं से मिलते-जुलते हैं।

डॉ. छबील कुमार मेहेर ने अपने वक्तव्य में कहा कि भाषा और संस्कृति दोनों अन्योन्याश्रित हैं। स्वभाषा ही संस्कृति को पोषित कर सकती है। उधार की भाषा से अपनी संस्कृति का पोषण संभव नहीं है। उन्होंने आह्वान किया कि हमें हिन्दी भाषा की महत्ता को पहचानना होगा। इसे केवल राजभाषा या राष्ट्रभाषा का दर्जा देना ही यथेष्ट नहीं है, अपितु इसे सम्पर्क भाषा, वैज्ञानिक भाषा और तकनीकी भाषा के रूप में पल्लवित-पोषित करना होगा। इसकी महत्ता को दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाना होगा। यदि ऐसा नहीं किया गया तो आनेवाला समय निश्चित रूप से कठिन होगा।

साहित्यकार हरिशंकर राढ़ी ने कहा कि भाषा और संस्कृति को इस तरह से युग्मित करके रखा जाए कि वह आपकी रक्षा कर सके। संस्कृति के दो महत्त्वपूर्ण मानक साहित्य और कला हैं। दोनों का संरक्षण आवश्यक है। जो भाषा और संस्कृति हमें अपने पुरखों से मिली है, उन्हें बुद्धि और विवेक से संजोकर रखना और आगे ले जाना हमारा कर्तव्य है।

कला मर्मज्ञ श्री विजयशंकर मिश्र ने अपनी बात रखते हुए कहा कि भाषा कुछ हद तक भेद उत्पन्न कर सकती है, किंतु सुर या संगीत हमेशा जोड़ने का ही काम करते हैं। यही कारण है कि संगीत सार्वभौमिक और धर्मनिरपेक्ष होता है। साहित्य को अनुवादक की ज़रूरत पड़ सकती है, लेकिन संगीत को किसी अनुवाद की आवश्यकता नहीं होती। उन्होंने क़व्वाली और भजन-कीर्तन का उदाहरण देते हुए कहा कि दरगाह में भजन-कीर्तन नहीं हो सकता और मंदिर में क़व्वाली नहीं हो सकती, जबकि दोनों का उद्देश्य ईश्वर की स्तुति ही है। इसका कारण केवल भाषा ही है, जबकि संगीत के साथ ऐसा नहीं है।

एनसीईआरटी में प्रोफेसर रहे डॉ. रामजन्म शर्मा ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र के काव्यांश 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल, बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल' को उद्धृत करते हुए कहा कि हिंदी जगत के अधिकांश विद्वानों ने इसकी व्याख्या संकीर्ण दृष्टि से की है, और इसे हिंदी से जोड़ दिया है। जबकि यह वास्तव में स्वभाषा या मातृभाषा की बात करता है।

संगोष्ठी का समाहार करते हुए सहायक निदेशक (राजभाषा) डॉ. तेजस्वरूप त्रिवेदी ने कहा कि जब तक हम प्रांतीय भाषाओं और संस्कृतियों को सम्मान नहीं देंगे, तब तक देश की एकता और अखंडता को आगे नहीं बढ़ा सकते। उन्होंने सभी वक्ताओं का आभार व्यक्त करते हुए कहा कि आज इस संगोष्ठी में भाषा और संस्कृति विषयक जितनी महत्वपूर्ण बातें उभरकर सामने आई, वह निश्चित रूप से संस्कृति के एक नये अध्याय का सूत्रपात करने वाली सिद्ध होंगी।

संगोष्ठी में श्रोताओं की उपस्थिति तो पर्याप्त थी ही, अकादेमी के फेसबुक पेज पर भी बहुत से लोगों ने इसको ऑनलाइन सुना।

उपेन्द्र कुमार मिश्र के काव्य संग्रह
'कैंडल मार्च' तथा गजल संग्रह 'दिल के समन्दर में' का लोकार्पण

हरिशंकर राढ़ी के ललित निबंध संग्रह 'नयन अरु बानी' तथा
व्यंग्य संग्रह 'साहित्य के शनिदेव' का लोकार्पण

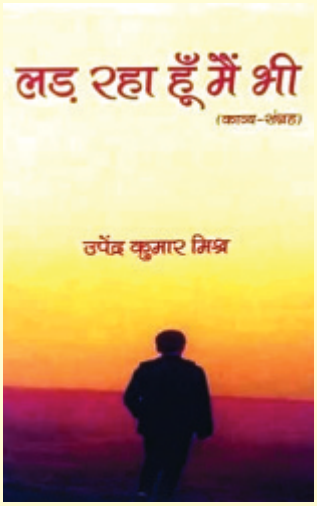
लड़ रहा हूँ मैं भी
(कहानी-संग्रह)
उपेंद्र कुमार मिश्र

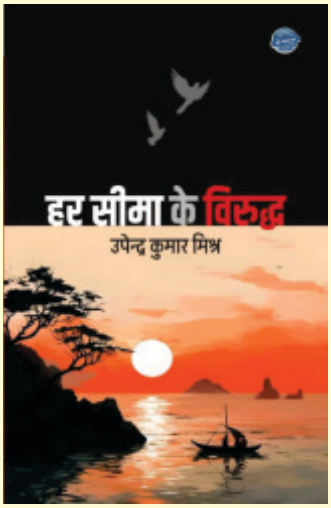
हर सीमा के विरुद्ध
उपेन्द्र कुमार मिश्र

दिल के समंदर
उपेन्द्र कुमार मिश्र

कैंडल मार्च
उपेंद्र कुमार मिश्र

अंधे पीसें...
हरिशंकर राढ़ी

कुल्हड़ की चाय
हरिशंकर राढ़ी
(ललित निबंध संग्रह)

साहित्य के शनिदेव
हरिशंकर राढ़ी

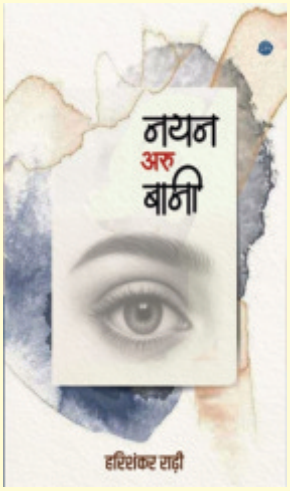
नयन
अरु
बानी
हरिशंकर राढ़ी